बुनियादी शिक्षा

एक नई कोशिश

अगस्त–अक्टूबर 2007 **अंक–16** सहयोग राशि : 15 रुपए

काम और शिक्षा

फोटो फीचर

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर में आयोजित ग्रीष्मकालीन शिविर (15 मई से 16 जून, 2007 तक) की चंद तस्वीरें

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक–16

परामर्श
हृदयकांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक
के. आर. शर्मा

सलाहकार
भागचंद्र कुमावत
प्रवीण भाई डाभी
भरत भाई जोशी
सुधा भण्डारी

सहयोग
तरू सुराणा

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कम्प्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टंकण
प्रेम सिंह झाला

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

इस अंक में

चिट्ठी पत्री 2

काम और शिक्षा

(1) राष्ट्रीय फोकस समूह : काम और शिक्षा (2004–2005) 5

(2) शिक्षा में श्रम को स्थापित करने का एक जतन 31
–नंद कुमार

रिपोर्ट

(3) कार्य और शिक्षा : एक कार्यशाला 33
–के.आर. शर्मा

(4) ग्रीष्मकालीन शिविर 35
–ललित पालीवाल

(5) हमने बहुत कुछ सीखा 36
–गणेश लाल मीणा

लीक से हटकर

(6) चरित्र निर्माण हेतु सर्वधर्म समभाव 38
–वि.वि. सिंह

(7) शिक्षा के कठिन दौर में एक सरल स्कूल 41
–सुरेन्द्र बासंल

शिक्षा कैसी हो?

(8) शिक्षा का मूल मकसद सामाजिक सरोकार पैदा हो 43
–डी.एस. पालीवाल

सेमीनार से

(9) शिक्षा में खुलापन का मुद्दा 45
–गोविन्द भाई रावल

(10) जरूरत है बुनियादी शिक्षा को पुर्नभाषित करने की 48
–शरद चंद्र बेहार

इतिहास के पन्नों से

(11) नई तालीम का बुनियादी ढांचा 52
–लक्ष्मीनारायण मित्तल

आवरण चित्र – विद्या भवन बुनियादी विद्यालय रामगिरि में एक छात्रा सिलाई की कक्षा में काम करते हुए।
पिछला आवरण– रामगिरि में शिविर–2007 के दौरान एक साथी पंखे की मोटर की रिवाइडिंग सीखते हुए।
आवरण, पिछला आवरण एवं शिविर की समस्त तस्वीरों के छायाकार : के.आर.शर्मा

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

चिट्ठी–पत्री

अंक मिला

आपके द्वारा भेजा हुआ बुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश पत्रिका का 14 वां अंक मिला। यह अंक पढ़कर बहुत आनंद हुआ। अंक में शामिल किए हुए लेख समाज के हर व्यक्ति का मार्ग दर्शन बन सकते है। आप सभी साथियों को इस सफल प्रयास के लिए धन्यवाद। विद्या भवन सोसायटी का समाज में अर्पित इस कदम को ज्यादा से ज्यादा सफलता मिले यही कामना करता हूं।

ईश्वर भाई पटेल
सफाई विद्यालय
गांधी आश्रम साबरमती
अहमदाबाद–380 027
गुजरात,

बुनियादी शिक्षा बनाम जीवन की शिक्षा

बुनियादी शिक्षा एक नई कोशिश पत्रिका का अंक 14 मिला। धन्यवाद।

मुझे यह पत्रिका हरदम मिलती है, मैं इसे चाव से पढ़ता हूं। अच्छा संपादन होता है। फिर भी उसमें जो सामग्री होती है उसका मेरे दिमाग पर जो असर हुआ वह मैं आपकी सेवा में सादर सोचने के लिये निवेदित कर रहा हूं।

बुनियादी शिक्षा की छाप आम जनता में और हम जो उनके कर्मी है, उनमें भी ज्यादातर लोगों में ऐसी बनी है कि यह सिर्फ उद्योग के विविध क्रियाकलापों के जरिए दी जाने वाली एक शिक्षा पद्धति है। शुरू में गांधी जी का भी ऐसा ख्याल था, लेकिन वे तो डायनेमिक थे। नित्य नूतन थे, उनका विचार शोधन सतत चलता रहता था। तो बुनियादी शिक्षा से आगे जाकर उन्होंने कहा कि मेरी शिक्षा तो नई तालीम है, जो गर्भाधान से शुरू होती है और मृत्यू पर्यंत चलती है। यानी वह समग्र जीवन के लिए दिए जाने वाली जीवन शिक्षा है।

इस दृष्टि से देखें तो उद्योग के जरिए दी जाने वाली शिक्षा तो जीवन का एक पहलू हुआ। वर्धा

शिक्षा योजना में भी कहा है कि शिक्षा के तीन आयाम है प्रकृति, समाज और उद्योग। जाने–अनजाने में हम इन तीनों में से सिर्फ उद्योग के पर्यावरण पर ही जोर दे रहे हैं।

मेरी दृष्टि में बुनियादी शिक्षा नई शिक्षा है, जिसमें समग्र जीवन है। बापू ने जीवन के कोई भी पहलू को छोड़ा नहीं था। वे तो शिक्षा के कलाकार थे। उनकी हर क्रिया शिक्षा का संदेश बन जाती थी। उनकी शिक्षा में हमारी प्राचीन परंपरा के अच्छे अंश तो हैं और पश्चिम परंपरा के अच्छे अंश भी समाविष्ट हैं। उसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और अद्यतन युग के विज्ञान टेक्नॉलोजी का भी समावेश है। और उन सभी का शिक्षा मूलक प्रयोग कैसे किया जाए, उस पर उन्होंने जीवन भर प्रयोग किए हैं।

मेरी समझ से गूजरात विद्यापीठ और विद्या भवन दोनों संस्थाएं सम्मिलित रूप से बुनियादी शिक्षा में जो संशोधन करता चाहते हैं उसमें वर्तमान संदर्भ में गांधी शिक्षा विचार जीवन के हर पहलू को कैसे स्पर्श करें, इस दृष्टि से सोचकर काम करना चाहिए। यदि मेरे इस अनुरोध में आपको कोई चीज सोचने जैसी और उस पर चर्चा करने जैसी लगे तो आप करें। में भी उसमें शरीक रहूंगा।

गोविन्द भाई रावल
विश्वमंगलम अनेरा, गुजरात

बधाई

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश का 15 वां अंक मिला। धन्यवाद। मैं बुनियादी शिक्षा टीम को बधाई देता हूं कि इतनी बढ़िया पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

रमा कांत अग्निहोत्री
भाषा विभाग
दिल्ली, विश्वविद्यालय, दिल्ली

मातृभाषा में पढ़ने वाले फिसड्डी नहीं

बुनियादी शिक्षा का मई–जुलाई 2007 का अंक प्राप्त हुआ। धन्यवाद।

इस अंक में मातृभाषा के उपयोग के बारे में जो जानकारी प्राप्त हुई है वह बुनियादी शिक्षा के प्रचार में स्थान रखती है, ऐसा मुझे लगता है। मुझे एक और जानकारी प्राप्त हुई है, वह मैं आपके माध्यम से पाठकों से बांटना चाहता हूं। 22 मई 2007 के टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रथम पेज पर एक खबर छपी कि आईएएस में मातृभाषा ने सबसे बढ़त दिखाई। आईएएस की 2006 की परीक्षा में भी प्रथम चुने गए उसमें से दो हिंदी मातृभाषा में और एक महिला (पल्लवी आकृति, आंध्रप्रदेश)

ने अपनी तेलगू मातृभाषा में सारी परीक्षाएं व साक्षात्कार में बातें की। अब मातृभाषा में लिखने और परीक्षा देने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। मैं एक तालिका भी प्रस्तुत कर रहा हूं। इस तालिका को पढ़ने से साफ होता है कि साक्षात्कार में मातृभाषा को ही माध्यम बनाया जाता है। और तो और इस बार जो प्रथम आया है वह भी आईएएस परीक्षा में पास हुआ है वह भी साधारण परिवार का और छोटे से गांव का निवासी है। यह भी देखने में आ रहा है कि अब अधिकांश परीक्षार्थी छोटे गांवों से आ रहे हैं।

वर्ष	साक्षात्कार में भाग लेने वालों की संख्या	अंग्रेजी	मातृभाषा	कुल चुने गए
2004	1162	882	280	413
2003	1176	825	351	457
2002	750	543	207	310
2001	1140	876	264	417
2000	875	886	189	427
1999	845	695	150	411
1998	964	813	151	470

तालिका में जो सन 2004 के आंकड़े दिए हैं उनमें से भी साक्षात्कार में मातृभाषा को चुना था।

वर्ष 2004 में साक्षात्कार में मातृभाषा में साक्षात्कार देने वालों में से 85 फीसदी ने हिंदी में प्रश्नों के उत्तर देना उचित समझा। दूसरे स्थान पर तेलगू और तमील मातृभाषा में साक्षात्कार दिया।

इस पूरे मसले से दो बातें स्पष्ट होती है–

1. अधिक सक्षमता मातृभाषा से प्राप्त होती है।

2. गांव और छोटे कस्बों के युवा अपनी क्षमता सिध्द कर रहे हैं।

जो अभिभावक अंग्रेजी के द्वारा ही अपने बच्चों को सिखाने का आग्रह कर रहे हैं वे जान लें कि मातृभाषा में पढ़ने वाले पीछे नहीं है। यह तो मातृभाषा द्वारा शिक्षा की बात में सच्चाई है ना!

ज्योति भाई देसाई

नहरकांठा वेड़छी, जिला सूरत (गुजरात)

राष्ट्रीय फोकस समूह का 'काम और शिक्षा' (2004–2005) पर स्थिति पत्र

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या– 2005 के तहत कार्य और शिक्षा पर राष्ट्रीय फोकस समूह गठित किया जाना कई मायनों में अर्थपूर्ण लगता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में काम को स्कूली पाठ्यचर्या का अभिन्न हिस्सा बनाने की वकालत की गई है। गांधी ने जिस तालीम की बात कही थी उसका एक प्रमुख स्तंभ है श्रम आधारित शिक्षा। गांधी ने भांपकर बुनियादी शिक्षा में काम को मुख्य स्थान दिया। जिस काम की बात गांधी ने कही थी वह उत्पादन से जुड़ा होना चाहिए। उत्पादक काम और ज्ञान के रिश्ते का महत्वपूर्ण पहलू मिमांसात्मक (Epistemological) है जिसमें ज्ञान की पूरी संरचना, ज्ञान का इतिहास, ज्ञान की प्रकृति, ज्ञान का चरित्र जैसे सवाल शामिल है।

क्या वज़ह है कि जानकारी आधारित शिक्षा का वर्चस्व बढ़ता गया और हाथों से काम करना हिकारत भरी नज़रों से देखा जाने लगा? यदि काम के माध्यम से शिक्षा का ताना–बाना बुना जाए तो इसके माध्यम से समाज की अनेक समस्याओं से छुटकारा पाया जा सकता है। जब कोई बच्चा मेहनत करता है तो उसके मन में शांति से जुड़े हुए भाव पैदा होते हैं। इसलिए मेहनत एक नैतिक ताकत है, इस रूप में इसको देखने की जरूरत हैं। काम और शिक्षा, पर यह विचार पत्र सूचना केन्द्रित शिक्षा व्यवस्था को खारिज़ करता है।

इस अंक में हम इस विचार पत्र का अधिकांश हिस्सा प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा की जानी चाहिए कि बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में या यों कहें कि शिक्षा को बेहतर बनाने की दिशा में प्रस्तुत सामग्री संदर्भ के रूप में मील का पत्थर साबित होगी।

काम के मामले में खासकर बच्चों के काम के मामले में दुनिया के सभी देशों और सभ्यताओं में स्थितियां लगभग समान है। गौरतलब है कि आज जबकि भारत की अर्थव्यवस्था विकसित पूंजीवाद के दौर में पहुंच गई है। भारतीय समाज तब भी कार्य के मामले में औद्योगिकरण की पूर्व स्थितियों में है देश के अलग–अलग हिस्सों में उसकी

स्थिति में भी काफी असमानताएं हैं। हालांकि ये असमानताएं बाजार के संदर्भ में वैश्विक उत्पादन के चलते भी आई हैं। भले ही ये परिवर्तन सकारात्मक हों या नकारात्मक।

ध्यान देने वाली बात यह है कि देश की कुल 93 प्रतिशत कार्यशक्ति फिलहाल असंगठित क्षेत्रों में लगी हुई है। स्कूली बच्चों की एक बड़ी संख्या सामाजिक पूंजी के रूप में इसी पृष्ठभूमि से आती है। हालांकि स्कूली पाठ्यचर्या में न केवल इस वर्ग की उपेक्षा की जाती है बल्कि उन्हें नीची नज़रों से भी देखा जाता है। दमन का सही साध्य और साधन है जिसका यह वर्ग वर्ग सदियों से शिकार रहा है। उदारीकरण और वैश्वीकरण के साथ–साथ जैसी की संभावना थी शहरी मध्यवर्ग और उच्चवर्ग के बच्चों के स्कूलों में भी इजाफा हुआ है और उनमें सवर्ण जातियों का वर्चस्व बढ़ा है।

दरअसल, जो शिक्षा व्यवस्था फिलहाल प्रचलित है, वही बच्चों में अकेलेपन की समस्या को बढ़ाने वाली है जिसके चलते ये बच्चे भारत की बौद्धिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत से पूरी तरह कट जाते हैं। परिणामस्वरूप आज बेपहचान, भटके हुए और एक ही तरह किशारों और युवाओं की पीढ़ी हमारे सामने हैं। ये युवा दुनियाभर की विवेकहीन सूचनाओं से तो लैस हैं लेकिन वास्तविक कार्यों, अर्थों में ये दुनियादार नहीं हो पाते।

इस तरह हमारी इस पूरी कवायद का उद्देश्य बच्चों को वास्तविक दुनिया से अलग–अलग करने वाली भारतीय शिक्षा व्यवस्था की पड़ताल करना है। इसके साथ हमारी कोशिश रहेगी कि आज की वैश्विक चुनौतियों के सदंर्भ में देश के एक बड़े उत्पादक वर्ग को ज्ञान आधारित शिक्षा से जोड़कर उसे शिक्षा व्यवस्था में बदलाव का एक माध्यम बनाएं। उपलब्ध आंकड़े बताते हैं कि बिना रोजगार के आर्थिक विकास दुनिया के कई देशों में (खासकर विकासशील देशों में) एक स्थाई उद्देश्य बनता जा रहा है। भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव के चलते न केवल उत्पादन के तरीके बदले हैं बल्कि बदलती तकनीकी में भी सामाजिक–सांस्कृतिक (भारत में जातिवाद) और लैंगिक भेदभाव भी बढ़ा है। साझा संपति और दूसरे प्राकृतिक संसाधनों के खात्मे ने भी समाज के दबे–कुचले लोगों को और बदहाल बनाया है। इन दुष्प्रभावों का सबसे बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ा है। इसने बहुसंख्यक लोगों को उत्पादक कामों से तो दूर किया ही है, उनके जीवन को और भी बदहाल बनाया है।

इन सामाजिक–आर्थिक और सांस्कृतिक सचाइयों को देखते हुए हम पाते हैं कि भारत वर्तमान शिक्षा व्यवस्था, ज्ञान और काम के बीच विखंडकारी है। इतना ही नही, इसने समाज और स्कूल के बीच की दूरी को भी काफी बढ़ाया है। दरअसल, इस विखंडन की जड़ में ब्राह्मणवादी व्यवस्था में जो जितना शिक्षित होता है, वह उत्पादक काम नहीं करता। न वैसा करने की उसके पास क्षमता होती है। नतीजा यह होता है कि ऐसा शिक्षित व्यक्ति समाज के लिए परजीवी हो जाता है। (देखें भारतीय शिक्षा आयोग 1882 पर महात्मा फुले का ज्ञापन) सामाजिक–सांस्कृतिक रवायतें और विखंडन के सामाजिक आयाम भारतीय शिक्षा की गंभीर समस्याएं हैं। एक अरसे से ये व्यवस्था का हिस्सा बनी रही है। और हमारी शिक्षा व्यवस्था में गहरे जड़ें जमा चुकी हैं। इसी का नतीजा है कि अलग–अलग कोटियों में कुछ वर्ग लिंग, जाति, संस्कृति और भाषाओं का समाज में प्रभुत्व रहा है। प्रचलित शिक्षा केवल इसी व्यवस्था को वैधता भी प्रदान करती है। इस प्रक्रिया में बड़े स्तर पर हमारे देश में उत्पादक शक्तियों से दूर होता गया और इससे जुड़े मूल्य और हुनर स्कूली पाठ्यचर्या से दूर होते गए।

उपनिवेशी सत्ता ने भी इसी 'वैध' और 'गणित' शिक्षा व्यवस्था को अपनाया जिसके परिणामस्वरूप उत्पादक काम सामाजिक परंपराओं से और भी दूर हो गया। समाज से काट देने वाली आज की भारतीय शिक्षा व्यवस्था का ही यह नतीजा है कि देश में आधे से ज्यादा बच्चे प्रारंभिक शिक्षा से वंचित हैं। दो–तिहाई बच्चे हाईस्कूल के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। इनमें सबसे ज्यादा चिंताजनक बात दलित और आदिवासी बच्चों की है, खासकर लड़कियों की।

'नई तालीम' का गांधीवादी इस ब्राह्मणवादी और उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था के लिए एक क्रांतिकारी चुनौती थी जिसके तह गांधी जी उत्पादक काम को स्कूली गतिविधियों में शामिल करने का प्रमुखता देते हैं। बेशक इस तरह की बात करने वाले गांधी जी न तो पहले व्यक्ति थे और न अकेले। इस तरह काम केंद्रित शैक्षिक कार्यक्रम पश्चिम के कई देशों में चलाए गए जिसमें विशेष रूप से पूर्व सोवियत संघ और दूसरे समाजवादी देश शामिल हैं।

गांधी जी के विचार में जीवन कठिन परिस्थितियों में उत्पादक काम मनुष्य का सबसे बड़ा शिक्षक है जिससे न केवल ज्ञानार्जन होता है बल्कि मनुष्य की क्षमता और मूल्यों का विकास भी होता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सबसे बड़ी कमी इसी बात की है। कई शोधों से यह बात समाने आई है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में स्कूली शिक्षा लेने के बाद बड़ी संख्या में छात्र वास्तविक जीवन में असफल साबित होते हैं। यहां तक कि उन्हें ढंग से किताबी ज्ञान भी नहीं हो पाता।

ऐसे में अगर उत्पादक कार्य को स्कूली गतिविधियों के केन्द्र में रखा जाए तो 'किताबी कीड़ा' होने के दोष से भी मुक्ति पाई जा सकती है। देखने में आता है कि काम से जुड़ा शैक्षिक अनुभव बच्चों के विकास में ज्यादा प्रभावशाली और आलोचनात्मक होता है। जिससे एक धर्मनिरपेक्ष, समतावादी और लोकतांत्रिक समाज का निर्माण किया जा सकता है।

ऐतिहासिक पुनरावलोकन

अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व करने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् 1906 में यह प्रस्ताव रखा था कि 'समय आ गया है कि अब सारे देश में लोग लड़के–लड़कियों की शिक्षा के सवाल को बड़े पैमाने पर उठाएं और देश की साहित्यिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय जरूरतों के मद्देनजर एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माण के लिए एकजुट हों जो हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान बने।'

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के लिए इस आंदोलन ने सैद्धान्तिक रूप से अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए कई शैक्षिक संस्थान खड़े किए और सरकारी व्यवस्था से अलग एक राष्ट्रीय शिक्षा के दर्शन के अनुरूप कई प्रयोगों को प्रोत्साहन भी दिया। राष्ट्रीय शिक्षा के इस विचार के केन्द्र में समाज और औपनिवेशिक दासता से मुक्ति दिलाना था। राष्ट्रवादी आंदोलन एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था के लिए प्रतिबद्ध था जो काम और शिक्षा के बीच कोई विभाजन नहीं

करती। दरअसल, ऐसा करके राष्ट्रवादी औपनिवेशिक सता की उस नींव को ही हिला रहे थे जिस पर यह टिकी थी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1937 में वर्धा में हुए राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में वैकल्पिक शिक्षा को लेकर जो राष्ट्रीय बहस हुई, वही दरअसल स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय नीति की भूमिका थी।

वर्धा के इस सम्मेलन में शिक्षाशास्त्रियों और कांग्रेस कार्यकर्ताओं के अलावा सातों प्रांत के शिक्षामंत्रियों ने भी भाग लिया था। सम्मेलन में गांधी जी के उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया जिसमें उत्पादक कार्य के माध्यम से बुनियादी शिक्षा की बात कही गई थी। प्रस्ताव में विद्यालय को एक समूह मानते हुए सहकारिता की भावना पर जोर दिया गया था, साथ ही छात्रों के उत्पादक कार्य के माध्यम से होने वाली आय से विद्यालयों को आत्मनिर्भर बनाकर सामाजिक बदलाव की बात खासा जोर देकर कही गई थी।

फिलहाल, हम शिक्षा के उस आदर्शवादी दर्शन की ही बात करेंगे जो बाद में 'नई तालीम' के नाम से जानी गई।

वर्धा के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन को संबोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था :

'आज जो बात मैं आपसे कहने जा रहा हूं वह शिक्षा से जुड़ी कोई मामूली बात नहीं है। मैं कहना चाहता हूं कि बच्चों को जो कुछ सिखाया–पढ़ाया जाए, वह व्यवसाय और हस्तकारी के माध्यम से सिखाया जाना चाहिए। आप तर्क कर सकते हैं कि हमारे देश में मध्यकाल में जो बच्चे केवल व्यवसाय ही सीखते थे, मैं आपकी इस बात से सहमत हूं लेकिन पूरी शिक्षा उस समय की हस्तकारी के माध्यम से नहीं दी जाती थी। उस समय व्यवसाय की शिक्षा व्यवसाय करते हुए ही दी जाती थी। हमारा उद्देश्य है कि व्यवसाय और हस्तकारी के साथ–साथ व्यक्ति का बौद्धिक विकास भी होना चाहिए, इसलिए मेरा कहना है कि सिर्फ व्यवसाय और हस्तकारी सिखाने की जगह बच्चों की पूरी की पूरी शिक्षा ही उसके माध्यम से दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए सिर्फ तकली को ही लें। तकली से छात्र जो पाठ पढ़ेंगे उससे वे सूत का इतिहास, लंकाशायर और पूरी ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में जान लेंगे... तकली कैसे काम करती है? उसका उपयोग क्या है? और उसमें कौन सी शक्ति छिपी हुई हैं? इस तरह बच्चा सारी चीज़ें खेल–खेल में ही सीख लेगा। इससे यह थोड़ा बहुत गणित भी सीख लेगा। जब वह पूछेगा कि तकली पर कितना धागा लपेटा गया है और तकली को कितनी बार घुमाया गया है...तो इस तरह कदम दर कदम यह गणित में दक्ष भी हो जाएगा। इसमें सबसे सुंदर बात यह होगी कि इस सबसे उसके दिमाग पर कोई बोझ भी नहीं पड़ेगा। सीखने वालों को इस बात का भान भी नहीं होगा कि वह सीख रहा है। खेलते–कूदते, हंसते–गाते तकली उसके पास होगी और खुद–ब–खुद एक महान पाठ पढ़ लेगा।'

वर्धा सम्मेलन में डॉ. जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया जिसे हस्तकारी के रूप में उत्पादक कार्य को शिक्षा प्रक्रिया के केन्द्र में रखकर स्कूली पाठ्यचर्या तैयार करना था। इस पाठ्यचर्या में छात्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का भी खास ध्यान रखा जाना था। (डॉ जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट 1938)

जिस साल वर्धा में शिक्षा सम्मेलन हुआ उसी साल गुजरात के हरिपुरा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का राष्ट्रीय सम्मेलन भी हुआ। यहां भी राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था बनाने का संकल्प लिया गया जिसमें अन्य बातों के साथ–साथ एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था बनाने

की बात कही गई थी जिसमें 'बुनियादी शिक्षा पूरी तरह हस्तकारी और व्यवसाय के माध्यम से दी जानी थी लेकिन बाद में छात्र की रूचि और परिस्थितियों के अनुसार विषय चुनने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।' इसके बाद कांग्रेस से इस शिक्षा व्यवस्था के विकास और प्रोत्साहन के लिए हिंदुस्तानी तालीमी संघ का गठन किया जिसके स्पष्ट दिशा–निर्देश के बाद सातों प्रांतों की सरकारों ने 'काम की दुनिया' और 'ज्ञान की दुनिया' को एक करने वाली शिक्षा व्यवस्था के प्रोत्साहन के लिए खुलने वाले स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करना भी शुरू कर दिया। लेकिन आजादी मिलने के बाद बनने वाली राज्य सरकारों ने अपने चरित्र के अनुसार वही पुरानी ब्राह्मणवादी और उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था को ही प्रश्रय दिया। बेशक, यह कहा जा सकता है कि अपने चरित्र में ही यह राजसत्ता सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में वर्ग और वर्णवादी थी और समाज का जो आभिजात्य तबका था उसका गांधी जी की विचारधारा से संघर्ष था ही। यह सवाल खुद हमें अपने आप से भी पूछना चाहिए कि 'काम से शिक्षा' के विचार के खत्म होने के वास्तविक कारण क्या थे? खासकर सन् 1950 से 1960 के बीच 'नई तालीम' के नेताओं की रणनीति का फिर से अध्ययन करना चाहिए। यह दुर्भाग्यपूर्ण लेकिन समझ में न आने वाली बात है कि क्यों इन वर्षों में 'नई तालीम' आंदोलन ने राज्य की शिक्षा नीति के मुकाबले खुद को अलग–थलग कर लिया और मुख्यधारा के स्कूलों से अलग बुनियादी शाला बनवाने तक ही सिमट गया। 'नई तालीम' का यह हश्र अंग्रेजी राज में तो समझ में आता है लेकिन आजादी के बाद ऐसा क्यों हुआ, यह शोध का विषय है।

फिर भी यह तो माना जा सकता है कि 'नई तालीम' के नेता जिनमें अपने समय के महत्वपूर्ण और प्रतिबद्ध शिक्षाशास्त्री थे, वे बाद में मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था के खिलाफ शिक्षा के स्वरूप में किसी भी बदलाव में रूचि लेना बंद कर दिया। यहां तक कि गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार और तमिलनाडु जहां 'नई तालीम' के प्रवक्ता या तो सरकार में थे या सत्ता के निकट थे, वहां भी इसके प्रमाण कम ही मिलते हैं कि मुख्यधारा की शिक्षा के खिलाफ उन्होंने कुछ ठोस किया हो। उपेक्षा का आलम यह था कि कुछ राज्यों, विशेषकर गुजरात में 1960 के दौरान सरकारी समर्थन से राज्य सैकेण्डरी परीक्षा बोर्ड के समानांतर बुनियादी शिक्षा बोर्ड का गठन करना पड़ा। वर्चस्व की यह स्थिति अब तक जारी है। नतीजा वही हुआ जिसकी आशंका थी। स्वतंत्रता प्राप्ति तक 'नई तालीम' की शिक्षा व्यवस्था का जो बुनियादी ढांचा खड़ा हुआ, वह भी बाद में नष्ट हो गया।

यह ध्यान देने वाली बात है कि आज नई तालीम के नेताओं को इस बात की शायद कोई चिंता नहीं कि गांधी जी की बुनियादी शिक्षा की क्रांतिकारी अवधारणा को 90 के दशक में ही भारतीय राज्यों ने पूरी तरह से नकार दिया जब विश्व बैंक बुनियादी शिक्षा की समानयन वाली परिभाषा लेकर आया। (उदाहरण के लिए सर्वशिक्षा अभियान को भी इसमें शामिल कर सकते हैं।) इस परिवर्तन ने पाठ्यक्रम में श्रम को शामिल करने की बहस का ही अंत नहीं किया बल्कि देश की आजादी की लड़ाई के दौरान देखे गये सपने से भी दूर कर दिया। (भारत जन विज्ञान जत्था 1995, सद्गोपाल, 2003–04)। ऐसे में शिक्षा में काम को शामिल करने की दिशा में कोई भी कदम उठाने से पहले हमें इतिहास के इन पाठों से सबक लेना चाहिए।

नीति और उसके व्यवहार की समालोचना

काम केन्द्रित शिक्षा

सन् 1964–66 में शिक्षा आयोग ने यह सिफारिश की थी कि 'काम को शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए' और इसकी व्याख्या इस तरह की थी कि व्यावसायिक शिक्षा के अंतर को यहां स्पष्ट नहीं किया गया था। आयोग ने कहा थाः

'काम का अनुभव इस तरह शिक्षा में काम से जुड़ेगा। यह न केवल संभव है बल्कि विज्ञान और तकनीकी केंद्रित आधुनिक समाज के लिए तो यह अनिवार्य ही है। औपचारिक शिक्षा की अति अकाद्मिक प्रकृति में बड़े स्तर पर बदलाव की जरूरत महसूस की जा रही है। हमारी नज़र में व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग तो है ही साथ ही उससे और भी दूसरे लक्ष्य हासिल किए जा सकते हैं। इससे शारीरिक श्रम को बौद्धिकता से कम आंके जाने की प्रवृति पर तो रोक लगेगी ही सामाजिक संतोष भी हासिल होगा। श्रम से जुड़े रहने पर बच्चों को बड़े होने पर खुद को किसी रोजगार में खपाने में भी मदद मिलेगी। इसके अलावा वैज्ञानिक ढंग से उत्पादक श्रम में छात्रों की हिस्सेदारी से राष्ट्रीय उत्पादकता भी बढ़ेगी। यही नही, इससे व्यक्ति और समूह के बीच रिश्ते मजबूत होने, शिक्षित और आम आदमी के बीच संवाद बढ़ने के कारण देश और समाज की एकता–अखंडता को बनाए रखने में भी मदद मिलेगी।

शिक्षा आयोग रिपोर्ट

गौरतलब है कि आयोग की सिफारिश शिक्षा में काम के अनुभव को शामिल करने की थी जो गांधी के उस विचार से भिन्न थी जिसमें उत्पादक काम को अनिवार्य रूप से (और सार्वभौमिक रूप से भी) शिक्षा के माध्यम के रूप में शिक्षा प्रक्रिया में शामिल होना था। विभिन्न भाषाओं की शिक्षा (जो एच्छिक थी, न कि थोपी हुई) गणित, विज्ञान, पर्यावरण, इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र की शिक्षा तकली, बढ़ईगीरी, लुहारी, खेती, छपाई और दूसरे उत्पादक कामों के माध्यम से देने की गांधी जी की और जाकिर हुसैन समिति की योजना ठीक वही नहीं थी जिनका जिक्र शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में किया है। इसके अलावा रिपोर्ट में इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि आयोग ने दूरगामी सामाजिक परिवर्तन के मद्देनजर पूरी शिक्षा प्रक्रिया को काम के साथ जोड़ा जाए। इस मामले में सेकेस (1988,1998) और फॉग (2002) दोनों के ही अध्ययन 'नई तालीम' के इन आयामों का विस्तृत प्रकाश डालते हैं।

इससे यह समझा जा सकता है कि क्यों छात्रों के शहरी और ग्रामीण पृष्ठभूमि में अंतर की उपेक्षा करते हुए आयोग 'नाक की सीध में देखते हुए' काम के अनुभव की वकालत हर बच्चे के लिए करते हुए कहता है कि इसकी शुरूआत तुरंत स्कूलों के चयन के साथ ही हो जानी चाहिए और इसके बाद जितनी जल्दी हो सके जरूरी सुविधाओं का विकास होना चाहिए। इस तरह के वर्गीकृत नजरिए से 'साझा पाठ्यचर्या की रूपरेखा' के निर्माण में कोई लाभ नहीं मिलता क्योंकि इसे लागू करना या न करना राज्यों की इस उदारता पर निर्भर करता है कि वह उसके लिए जरूरी संसाधन उपलब्ध करवाए बजाय इसके कि वह संपूर्ण स्कूली शिक्षा में आमूलचूल बदलाव का माध्यम बने।

इसके अलावा भारत में शिक्षा क्षेत्र में हुए प्रयोगों के

इतिहास ने (जिसमें 'नई तालीम' के अलावा टैगोर के शांति निकेतन को शामिल कर सकते हैं।) हमें बताया कि पूरी शिक्षा को लेकर कोई नया विचार, चाहे वह कितना ही सुंदर क्यों न हो, को आंशिक रूप से लागू करना कभी सफल नहीं हो पाता क्योंकि बच्चों के परिजन हमेशा इस बात को लेकर असुरक्षित रहते हैं कि कहीं उनके बच्चे मुख्यधारा की शिक्षा व्यवस्था के मुकाबले में अलग–थलग न पड़ जाएं।

यह जांच का विषय है कि शैक्षिक पाठ्यक्रम में उत्पादक काम को शिक्षा प्रक्रिया का हिस्सा बनाने में आयोग की हिचकिचाहट के पीछे क्या देश में उसके असफल होने की आशंका ही तो नहीं थी? यही हिचकिचाहट 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सिफारिशों में भी नज़र आती है जिसमें बजाय काम को समग्र शैक्षिक विकास का माध्यम बनाने के छात्रों की श्रमशक्ति से 'परिचित' कराने के लिए व्यावसायिक कार्यक्रम चलाने की बात कही गई थी जिसमें हायर सैकेंडरी के बाद पूरी तरह व्यावसायिक शिक्षा के चयन की सुविधा होगी।'

इससे यह ध्वनि निकलती है कि 'काम का अनुभव' का अर्थ यहां सिर्फ काम शक्ति पैदा करना और व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाना भर लगाया गया बजाय इसके कि उसके माध्यम से समाज सापेक्ष ज्ञान देकर सृजनशील और सार्थक नागरिक बनाए जाएं।

व्यावसायिक शिक्षा को काम केंद्रित शिक्षा से जोड़ने के मूल में सबसे बड़ा भ्रम यही रहा है। इस प्रयास में समानयन की मात्रा के आधार पर जिस शिक्षा नीति की रूपरेखा बनी उसमें शिक्षा में काम के अनुभव के सामाजिक आयामों और गुणवत्ता का ही अंत कर दिया गया।

यहां यह रेखांकित करना जरूरी है क्योंकि विभिन्न स्कूलों में फिलहाल जो शैक्षिक पाठ्यचर्या चल रही है, यह न तो उत्पादक श्रम के माध्यम से शिक्षा प्रक्रिया का ही प्रतिनिधित्व करता है और न ही शिक्षा आयोग की श्रम का अनुभव लेने वाली संकल्पना का ही। श्रम के माध्यम से शिक्षा का क्रांतिकारी विचार आज व्यवहार में सिमटकर न के बराबर रह गया है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने शिक्षा में काम की हिस्सेदारी के लिए क्रमशः सन् 1975, 1988 और 2000 में तीन शैक्षिक पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार की। हालांकि सीबीएससी ढांचे के स्कूलों में जहां एनसीईआरटी का ही पाठ्यचर्या चलता है, में इस विचार की मूल संकल्पना का कोई चिन्ह मुश्किल से ही मिलता है। यही नहीं, आमतौर पर व्यावसायिक शिक्षा को लेकर अकाद्मिक हलकों में भी खासा भ्रम दिखाई देता है। खासकर उस वक्तव्य को लेकर जो गांधी जी ने 1937 में वर्धा के शिक्षा सम्मेलन में दिया था।

सामुदायिक काम और सामाजिक क्रिया

स्कूली शिक्षा में सामुदायिक काम और सामाजिक क्रिया को लाना श्रम केंद्रित शिक्षा जिसमें उत्पादक काम नैसर्गिक ढंग से समाज से जुड़ता है, का गलत रूप है (जाकिर हुसैन समिति, 1938) यह दुःख की बात है कि आज की शिक्षा व्यवस्था भी शिक्षित और अशिक्षित, बौद्धिक और आम आदमी के बीच की खाई को बढ़ाने का काम कर रही है। कि

क्यों इतना संवेदनशील दिखने वाला विचार खत्म हो गया।)

ईश्वरभाई पटेल समिति द्वारा प्रस्तावित एसयूपीडब्ल्यू का विचार दरअसल +2 से हायर सैकेण्डरी शिक्षा के व्यावसायीकरण के राष्ट्रीय पुनरावलोकन समिति के विचार की पूर्वपीठिका ही थी। (उदाहरण अदिशेसिया समिति, भारत सरकार 1978) फिर भी शिक्षा की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका का आयाम और शिक्षा व्यवस्था में काम की केंद्रीयता कमजोर ही रही। इन उच्च समितियों में से किसी ने भी मूल प्रस्ताव के विरोधाभासों को नहीं देखा। आखिर कैसे एसयूपीडब्ल्यू जो सिर्फ स्कूल समय सारणी बनाकर ही श्रम केंद्रित शिक्षा के लक्ष्य को हासिल करना चाहती थी? (जिसमें उत्पादक काम में हिस्सेदारी को ज्ञान प्राप्ति, मूल्यों के निर्माण और हुनर के विकास के रूप में देखा जाता है।) क्या एक अलग विषय के रूप में एसयूपीडब्ल्यू का निर्माण ही गांधी जी के सिद्धांत के खिलाफ नहीं था? क्या इसके मूल में वही विखंडन नहीं है जो ब्राह्मणवादी–उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था की खास पहचान है। एसयूपीडब्ल्यू में कोई उत्पादक काम करने से ही बच्चों की सृजनात्मकता में कमी आ जाती है। ज्ञान और काम के बीच का यह अलगाव वर्चस्ववादी सत्ता को तो जन्म देता ही है, साथ ही सामुदायिक काम व कार्यक्रमों पर भी असर डालता है जो पूर्वाग्रहों के चलते महज 'अन्य गतिविधियों' तक ही सिमट कर रह गया है। शिक्षा, शिक्षक और पाठ्यचर्या व्यवस्था के चरित्र को बताते हैं। ऐसे में इसे अति सरलीकरण नहीं कहा जा सकता है कि एसयूपीडब्ल्यू के रूप में यह शिक्षा के संस्थानीकरण का प्रयास था क्योंकि इससे व्यवस्था में किसी भी प्रकार के बुनियादी बदलाव के स्वर नहीं सुनाई देते। इसमें विरोधाभासों के इस हद तक फैलने की गुंजाइश दिखाई देती है कि कालांतर में वही व्यापक सामाजिक सांस्कृतिक विघटन का कारण बन सकती है।

1985 में जब नई शिक्षा नीति बन रही थी तब सरकार ने इस नीति का जो प्रस्ताव तैयार किया था उसका शीर्षक था 'शिक्षा की चुनौतियां : एक प्रस्तावना' यह कहता है:

'सामाजिक हित के उत्पादक कार्यक्रम, राष्ट्रीय सेवा योजना और इस तरह की दूसरी पहलकदमी मनचाहा परिणाम नहीं दे पाएंगी क्योंकि परीक्षा का चरित्र ही पाठ्यचर्या और शिक्षा पद्धति तय करता है जिससे इसे लेकर छात्रों का रूख ही बदल जाता है। वर्षों से परीक्षा पद्धति स्मृति आधारित, एकरस और व्यक्तित्व संपूर्ण विकास की उपेक्षा करने वाली बनी हुई है। उसमें छात्र की रूचि, मूल्य और शारीरिक–मानसिक क्षमता का भी ध्यान नहीं रखा जाता।' शिक्षा की चुनौतियां : एक प्रस्तावना, भारत सरकार (खंड 4.96 और 4.98)

ऐसा लगता है कि नीति निर्माता इस परीक्षा व्यवस्था के शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता पर पड़ने वाले चिंताजनक दुष्प्रभावों के बारे में जानते थे। इसी सिललिसे में सन् 1986 की नीति में इससे जुड़े सरोकारों की कुछ झलक मिलती है जिसमें कहा गया कि 'परीक्षा व्यवस्था को इस तरह से बदलने की जरूरत है कि उससे छात्र के विकास का सम्यक मूल्यांकन हो सके और वह सीखने और शिक्षित होने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सके।' (एनईपी, 1986, 8.23–8.25)

इसके बावजूद इस उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था को बदलना न केवल मुश्किल रहा बल्कि स्थिति पहले से ज्यादा बदतर हो गई। ऐसा लगता है कि हमारे नीति निर्माता इस बात को समझना ही नहीं चाहते कि क्यों उनकी सिफारिशें शिक्षा व्यवस्था को बदलने में नाकाम रही। इसके पीछे मूल कारण शायद यह है कि कोई इस असहज सवाल से रूबरू होना नहीं चाहता कि वर्तमान व्यवस्था आखिर किसके हितों की रक्षा कर रही है? यह जानना भी मुश्किल नहीं कि

यह अतार्किक और भेदभावपूर्ण व्यवस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति करती है। (अ) स्कूली व्यवस्था से हर साल बड़ी संख्या में बच्चों का बाहर धकेलकर! निर्धारित आयुवर्ग के दो तिहाई आदिवासी और दलित वर्ग के बच्चे कक्षा दस से आगे नहीं पढ़ जाते। यही बच्चे आगे चलकर देश की 70 से 80 प्रतिशत जनसंख्या का निर्माण करते हैं। बुनियादी शिक्षा के लगातार नीचे गिरते उपलब्धि के पैमाने बताते हैं कि छह से चौदह आयुवर्ग के आधे बच्चे तो स्कूल तक नही नहीं आ पाते। (ब) ऐसा संभव इसलिए होता है क्योंकि समाज का आभिजात्य तबका आर्थिक कारणों से इन वर्गों पर वर्चस्व बनाए हुए हैं। (स) केवल उसी की शिक्षा व्यवस्था को बनाया, बचाया और प्रोत्साहित किया जाएगा जो या तो सवर्णों या उच्च वर्गों का प्रतिनिधित्व करे या फिर विश्व बाजार का। इन्हें चुनौती देने वाला हर विचार व्यवस्थित ढंग से खत्म कर दिया जाएगा। इस परिप्रेश्य में इस बात की भी व्याख्या की जा सकती है कि क्यों यशपाल समिति (1993) की संवेदनशील सिफारिशों का अब तक लागू नहीं किया गया। अगर ये सिफारिशें लागू हो गई होती तो यह उम्मीद बनती कि स्कूली शिक्षा को बार धकेले गए बच्चों का प्रतिशत कुछ कम हो। यही वह चीज है कि जिसकी उपेक्षा करना नीति निर्माताओं के लिए काफी मुश्किल हो रहा है खासकर नई उदारवादी आर्थिक नीतियों के साथ राज्य के सामंजस्य बन जाने के बाद। फिलहाल यह स्थिति तब तक नहीं बदलने वाली जब तक कि इन असुविधाजनक सवालों की अनदेखी की जाती रहेगी।

शिक्षा और अक्षमता

यह तो सब जानते है कि छात्रों का एक बड़ा तबका अक्षम होने के कारण शिक्षा के पहले चरण में ही शिक्षा से बाहर हो जाता है। जैसे कोई दस साल तक अंग्रेजी की शिक्षा लेने के बाद भी अगर शुद्ध चिट्ठी तक न लिख सके या अपने विचारों को व्यक्त न कर सके या बी.एससी. तक पढ़ने के बाद बिजली का फ्यूज भी न लगा सके, अर्थशास्त्र की शिक्षा लेने के बाद चीनी या सूत में हुई मूल्यवृद्धि की व्याख्या न कर सके तो यह उसकी अक्षमता है। हाईस्कूल में पढ़ने वाले शहरी बच्चे अपना भोजन नहीं बना सकते या दलित बच्चों की तरह उन्हें घर के सामान्य कामकाज के लिए बुनियादी मनौवैज्ञानिक प्रोत्साहन और हुनर नहीं सिखाया जाता, जिसके चलते उनकी रूचि न तो खाना पकाने, साफ–सफाई करने, कपड़े धोने, मालीगीरी करने आदि में होती है और न ही वे उसके लायक रह जाते हैं। उनके मन में यह बैठ जाता है कि ये सारे काम उनकी शान के खिलाफ है। (यहां कोई यह सवाल क्यों नहीं करता कि कैसे उसी वर्ग और वर्ण की लड़कियां बिना अपनी अस्मिता और इज्जत की परवाह किए कैसे इन सारे कामों में खुद–ब–खुद दक्ष हो जाती है।)

दूसरे शब्दों में कहें तो इन छात्रों के पास कागज के एक टुकड़े के रूप में सिर्फ एक प्रमाणपत्र रहता है जो कम ही किसी योग्यता का हुनर का प्रमाण दे पाता है। यह अतिकथन न माना जाए तो कहा जा सकता है कि राज्य के स्कूलों का प्रबंधन कुछ इस तरह से किया है कि (अ) ज्ञान के आधार पर बच्चे अपने परिवार और समुदाय में अलग–थलग पड़ जाएं। (ब) उत्पादक काम करते समय उसे लेकर

गर्व की कोई भावना या मूल्य बाकी न रहे। (स) स्कूल आने से पहले बच्चे ने जो कुछ भी सीखा हो, वह सब भी भूल जाए।

जाहिर है कि शैक्षिक पाठ्यचर्या में हुनर को सबसे कम प्राथमिकता मिलती है या उसे पूरी तरह नजरअंदाज ही कर दिया जाता है। इसमें आप चाहें तो सामाजिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और संबंधों की कला को भी जोड़ सकते हैं जो सीधे–सीधे तर्कसमता, संवाद क्षमता, संगठन क्षमता, प्रगतिशीलता, अध्यवसाय (जिसमें रचनात्मकता, अंतःप्रेरणा, सार्वजनिक उत्तरदायित्व, सांस्कृतिक संवेदनशीलता और वैज्ञानिक दृष्टि भी शामिल है।) भी शैक्षिक पाठ्यचर्या का अनिवार्य हिस्सा नहीं बन पाता सिवाय लफ्फाजी के। यहां तक कि अकाद्मिक दृष्टि से भी यह 'ज्ञान' इतना सतही, किताबी और सीधे कहें तो ऐसी ढेर सारी फिजूल सूचनाओं का संग्रह भर रह जाता है जो परीक्षा पास करने के लिए तो जरूरी है लेकिन बाद में किसी काम नहीं आती।

जीवन में तो हर कदम पर हमें अपनी योग्यता साबित करनी पड़ती है, सिर्फ सैद्धान्तिक ज्ञान से कुछ भी नहीं होता। इस प्रकार जो लोग व्यवस्था से शिक्षित होकर बाहर आते हैं, उनमें अपने आपको पर्याप्त आत्मविश्वास नहीं होता। उनकी शिक्षा ही उनके आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और ज्ञानी होने के रास्ते में बड़ी बाधा बन जाती है। कुछ लोग कह सकते हैं कि इसी व्यवस्था में कई सफल व्यक्ति भी हुए है जिन्होंने बाहर जाकर अच्छा काम किया। लेकिन यहां हम उनकी 'पुनः शिक्षा प्रक्रिया' और उस नजरिए को, जो कठिन हालात में भी उनकी अपनी मौलिक बुद्धि के प्रयोग की मानसिक प्रेरणा को नहीं देखते। जिसके चलते वे योग्य और सफल साबित हुए। हमारी शिक्षा व्यवस्था के सामने सबसे बड़ी चुनौती यही है कि कैसे ऐसे परिस्थितियां पैदा हो जो स्कूल और उसके बाद भी ज्ञान और काम के बीच पुल बनाने का काम करें।

काम और ज्ञान

वर्चस्ववादी शैक्षिक विमर्श के चर्चा के काम में शैक्षिक माध्यम के रूप में लेने का समायोजन नहीं हो सकता। इसके कारण कुछ इस तरह हैं:

- ज्ञान की पूरी संरचना, जिसमें ज्ञान के केवल वर्चस्वशाली आभिजात्य स्वरूप को ही दर्शनीय, वैध और प्रामाणिक माना जाता है। इस प्रक्रिया में एक बड़ा उत्पादक तबका स्कूली शिक्षा व्यवस्था से ही बाहर रह जाता है।
- हर ज्ञान सार्वभौम और अलिखित है और उसमे कुछ नया नहीं जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार पाठ्यचर्या सूचनाओं के संग्रहण की ओर प्रवृत होती और पाठ में किसी भी प्रकार का परिवर्तन केवल सूचनाओं को जोड़–घटाव भर रह जाता है।
- सामान्य और राष्ट्रीय बालक की अवधारणा पर आधारित सीखने की प्रक्रिया स्वीकारना। यह एक अर्मूत विचार है उस पर भी ऐसी जगह लागू किया गया जहां स्वर्ण पुरूषवादी वर्चस्व था (उत्तर भारत की हिंदी पट्टी) सार्वभौम आदर्श बालपन की धारणा (मासूमियत, जिज्ञासा और वयस्कों पर पूरी निर्भरता जिनका लक्षण

है।) को आमतौर पर हर समाज में पाठ्यचर्या लेखकों, नीति निर्माताओं, अध्यापकों, शिक्षाशास्त्रियों के साथ–साथ दृश्य माध्यमों (टीवी, फोटोग्राफी आदि) काफी समर्थन मिलता है। मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी और नौकरशाहों के साथ–साथ फंड के वितरण पर निगरानी रखने वाली अंतरराष्ट्रीय कल्याणकारी संस्थाएं भी इसका कारण हैं।

- पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और मूल्यांकन प्रक्रिया में वर्चस्वादी शैक्षिक सिद्धान्त और उनका व्यावहारिक प्रयोग जो 'राष्ट्रीय बच्चे' को संबोधित है।
- पाठ्यचर्या केंद्रित शैक्षिक चर्या जो वर्चस्ववादी ज्ञान की संरचना के पूर्वाग्रह से ग्रस्त है और उस बच्चे के लिए असंगत होती है जो कथित राष्ट्रीय बालक के खांचे में नहीं आता।
- उपरोक्त पूर्वाग्रहों के आधार पर अध्यापक प्रशिक्षण कोर्स।

बाल श्रम बनाम मजदूरी

भिन्न–भिन्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के बच्चों के लिए 'श्रम' की अवधारणा अलग–अलग होती है। उच्च आर्थिक स्तर में बचपना लंबा होता है। क्योंकि उन्हें पढ़ाई लिखाई के बाद नौकरी करने तक आर्थिक असुरक्षा का सामना नहीं करना पड़ता। दूसरी और गरीब परिवारों के बच्चों के बचपन और बाद कामकाजी जीवन में ज्यादा अंतर नहीं होता क्योंकि किशोर होते–होते परिवार की मदद के लिए श्रम करना इनकी मजबूरी होती है। (एंटोनी और गायत्री, 20) आंध्रप्रदेश के एक गांव का अध्ययन बताता है कि कैसे बच्चों के श्रम ने इस गांव की पूरी सामाजिक संरचना ही बदल दी। इससे अप्रत्यक्ष रूप उनके परिवारों को भी लाभ हुआ क्योंकि वह बिना मूल्य लिए किया गया श्रम था इसलिए तो कई का तर्क है कि बाल श्रम को इस तरह से कामों से जोड़ना ठीक नहीं है।

6–14 वर्ष आयुवर्ग के बच्चों के लिए सार्वभौम शिक्षा के विकास की कोई भी बहस विभिन्न समुदायों की स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखे बिना सार्थक नहीं हो सकती। खासकर जाति आधारित पेशों और लड़के–लड़कियों के बीच सामाजिक जिम्मेदारी के अंतर को ध्यान में रखना होगा। विभेदीकरण की समस्या विशेषतः काम केंद्रित शिक्षा योजना की सबसे बड़ी मुश्किल है। बाल मजदूरी की परीक्षा, स्कूल से धकेला जाना या भागना और उन बच्चों की मुश्किल जिन्हें स्कूल के साथ–साथ घर की भी जिम्मेदारी निभानी होती है आदि बचपन और वयस्कता की प्रतीकात्मकता अवधारणा के संदर्भ में कतई असंगत है।

शिक्षा के संदर्भ, पिछले तीन दशकों का चिंतन वास्तव में दुनिया के विभिन्न भागों के बच्चों के बीच सीखने और जानने की पश्चिमी वर्चस्ववादी अवधारणा का ही स्वीकार है। इसमें इस बात पर आम सहमति है कि शिक्षा दो पीढ़ियों के बीच संवाद बढ़ाने में सकारात्मक भूमिका निभाता है। खासकर यह शिक्षा जो भौतिक संसार में प्रत्यक्ष चाक्षुष अनुभवों पर आधारित होती है। बचपन को

लेकर इधर जो नए शोध हुए हैं, उनका निष्कर्ष है कि बचपन भी सामाजिक जीवन का अनिवार्य हिस्सा है, न कि शुरूआती मासूम अवस्था। उसके अनुसार राज्य, माता–पिता और बच्चों के बीच के जटील राजनीतिक तनाव बच्चे के जीवन पर भी असर डालते हैं। बच्चों की क्षमता के विश्लेषण में देखा गया है कि बच्चे के बचपन का निर्माण उसके आस–पास का समाज करता है।

शिक्षा खासकर काम केंद्रित शिक्षा के संदर्भ में यह पुनर्विचार सामान्यतः आलोचनात्मक है। भौतिक और सामाजिक जीवन से गहरा नाता हाशियाकृत के ज्ञान, मूल्य और हुनर को उनके जीवन में धार लाता है जो इन अवसरों से वंचित है। काम केंद्रित शिक्षा की योजना बनाते समय हमारे सामने जो चुनौतियां हैं उनके मद्देनजर हमें बच्चों की पृष्ठभूमि और स्कूल न आ पाने की समस्या को भी देखना होगा ताकि वे सम्मान, स्वाभिमान और दृढ़ता के साथ स्कूलों में आ सकें।

शिक्षा में अकेलापन

स्कूलों में छात्रों की रूचि को 'ड्राप आउट रेट' यानी स्कूली छोड़ने की दर से समझा जा सकता है। फिर जमीनी पर्यवेक्षण और एनएसएसओ के आंकड़े हैं कि दलित, आदिवासी और भाषायी–सांस्कृतिक दृष्टि से अल्पसंख्यकों के बच्चों खासकर लड़कियों में उस तरह से अपनी मर्जी से स्कूल नहीं छोड़ती बड़े सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष ढंग से स्कूल को छोड़ने को मजबूर की जाती हैं। इससे साफ जाहिर है कि दलित बच्चे इस व्यवस्था के प्रति कितने उदासीन है।

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि एक तरफ जहां वर्तमान स्कूली शिक्षा में सामुदायिक ज्ञान असंगत ठहरता है तो दूसरी तरफ पाठ्यचर्या जाति और लिंग की रूढ़ियों को स्थापित करती है। हाशिये के इन समुदायों के बच्चे सीखने की पुरानी पद्धति की बुनियादी संकल्पना को पकड़ ही नहीं पाते क्योंकि वर्तमान शैक्षिक पाठ्यचर्या में यह लगभग अदृश्य है। कई दलित बुद्धिजीवी जातिवादी समाज में ज्ञान की अवधारणा पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहते हैं ब्राह्मणवादी शिक्षा व्यवस्था में ज्ञान की अवधारणा सीखने की प्रक्रिया में उत्पादक काम का अवमूल्यन करती है। (गुरू और गीता) इलैया (1996) ने लिखा है कि स्कूली अनुभव हाशिये के समाजों के बच्चों के लिए दारूण और पीड़ादायक होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि सीखने की इस प्रक्रिया में उनका स्वाभिमान और आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है।

एक–दूसरे स्तर पर जो स्कूली व्यवस्था फिलहाल चलन में हैं यह छात्रों को बेहतर जीवन का वायदा नहीं करती और यह होता है वर्तमान व्यवस्था की ढांचागत खामियों की वजह से। परीक्षा भर पास कर लेना किसी के लिए रोजगार या नौकरी की गारंटी नही होती, न ही व्यवस्था बच्चे के उस हुनर का विकास होने देती है जिसके बल पर वे स्थानीय अर्थव्यवस्था में अपने पैरों पर खड़े हो सकें। उल्टे पाठ्यचर्या ही बच्चे में ऐसे हुनर या योग्यता के प्रति एक हिकारत का भाव भर देती है। (सारंगपाणि, 2005)।

स्थिति पत्र साफ है, कहता है कि पाठ्यचर्या के केंद्र

में काम को रखकर ही शिक्षा व्यवस्था के इस ब्राह्मणवादी ढांचे को चुनौती दी जा सकती है। जिससे आम आदमी दलितों के ज्यादा निकट आएगा। (कृष्ण कुमार, 2005) फिर भी स्थिति पत्र में इस बात की जरूरत महसूस की जा रही है कि शैक्षिकचर्या में उत्पादक काम को कुछ इस तरह शामिल किया जाए कि उससे एक ऐसे शिक्षा ढांचे का निर्माण हो जिसमें समकालीन जीवन स्थितियों के अनुकूल दबे–कुचले लोगों की वास्तविक जीवन स्थितियां व्यक्त हों।

इसे हम सूत्ररूप में 'अज्ञान से ज्ञान की ओर' जाना भी कह सकते हैं। श्रम को संपूर्ण शैक्षिकचर्या में शामिल करने से यह बिल्कुल संभव है कि सामुदायिक संसाधनों की अर्थपूर्ण जानकारी के साथ–साथ बच्चों में वह हुनर भी पैदा हो जाए जो उन्हें उच्च शिक्षा की ओर ले जा सके और / या उपलब्ध स्थानीय अर्थव्यवस्था में ही अपने पैरों पर खड़े होने का मौका दे।

लैंगिक मुद्दे

जैसा कि काम और ज्ञान में बताया जा चुका है कि ज्ञान का वर्चस्ववादी रूप भारतीय समाज में उच्च वर्ग और वर्ण से संबंध रखता है। और पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों और पूरी मूल्यांकन प्रक्रिया में व्याप्त है। इसमें हम ज्ञान के पुरूषवादी आयाम को भी जोड़ लें जो सूक्ष्म और स्थूल ही रूपों में शामिल रहता है। इसकी काट में 'ज्ञान की स्त्रीवादी' परिभाषा भी विकसित हुई। इसके पीछे पुरूष प्रधान समाज में 'प्रजनन और स्त्री यौनिकता' के सवाल पर समान अवसर और आर्थिक आजादी के लए किया गया नारीवादी आंदोलन था। (देखें: 'शिक्षा में लैंगिक मुद्दे' पर राष्ट्रीय फोकस समूह की रिपार्ट)

काम केंद्रित पाठ्यचर्या और व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण के संदर्भ में इसी रिपोर्ट पर उद्धरण देखें–

'स्कूली शिक्षा असल में लैंगिक असमानता और हर स्तर पर समाज को विखंडित करने वाली है। सामाजिक संदर्भों में जरूरी लड़कियों के स्कूलों में औरत की आजादी को स्पेस मुहैया कराया। लेकिन स्कूल व्यवस्था और उसी पूरी प्रक्रिया मूलतः सांस्कृतिक पुनरूत्थादन और सामाजिक नियंत्रण का एक औजार है। स्कूली शिक्षा का अर्थ में पालतू बनाने की प्रक्रिया है। अगर हम देखें तो स्कूली पाठ्यपुस्तकों और कक्षाओं में 'लिंगाधारित घरेलू काम विभाजन' का ही चित्रण देखने को मिलता है। अक्सर इनमें दलित जाति के लोगों को नौकर या दास ही बताया जाता है और लड़कियों को घरेलू साफ–सफाई का पाठ पढ़ाया जाता है।

काम केंद्रित पाठ्यचर्या और व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उत्पादक श्रम को हर हाल में लैंगिक असमानता को बढ़ावा देने वाले औजार की तरह नहीं होना चाहिए। इस समय हमारे सामने इस तरह की शिक्षा नीति बनाने की चुनौती है जो बालिकाओं को उनके बुरे अतीत से बाहर लाकर स्त्री सशक्तीकरण को बढ़ावा देने वाली हो। यूईई की रिपोर्ट के हवाले से आयोग का मानना है कि

अभिभावकों द्वारा स्कूल से निकाल ली गई बालिकाओं का एक बड़ा हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्रों में कामरत है। (काम शक्ति रिपोर्ट 1988) जिन्हें श्रमिक मानते हुए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को स्वीकार करना चाहिए। आगे आयोग प्रस्ताव करता है कि 'उत्पादक संसाधन स्त्रियों के हाथ में होने का प्रावधान होना चाहिए।... जो गुणवत्ता पूर्ण जीवन के लिए अपने जीवन का बड़ा हिस्सा गुणवत्ता पूर्ण ज्ञान, हुनर, संगठनक्षमता और आत्मविश्वास के साथ लगाती है।'

काम केंद्रित शिक्षा की संकल्पना के संदर्भ में यह बहुत मूल्यवान विचार है खासकर तब जब 'नक्सलवादी सक्षमता' की पृष्ठभूमि में एक तरफ बालिकाओं की समताओं में भेदभाव किया जाता है और दूसरी तरफ 'पैतृक सामाजिक ढांचे' को हटाने की भी बात की जा रही है। क्योंकि अंततः समाज के लैंगिक रिश्तों के पुनर्निर्माण की जरूरत है।

अयोग्यता की चुनौती

'विशेष जरूरतों के मद्देनजर छात्रों की शिक्षा' पर राष्ट्रीय फोकस समूह का स्थिति पत्र शिक्षा पर उस सम्मिलित एजेंडे का समर्थन करती है जिसकी पाठ्यचर्या लचीली हो और अनुकूल और प्रतिकूल दोनों क्षेत्रों में स्कूली बच्चों की विविधता का ध्यान रखती हो। इसमें व्यवस्था में बदलाव की नियमित श्रृंखला की जरूरत निहित है जिससे वे सभी बाधाएं दूर हो सकें जो विकलांग बच्चों को नियमित स्कूलों में दरपेश होती हैं। स्थिति पत्र में मिली–जुली पाठ्यचर्या के कई फायदों की सूची दी गई है। जिससे बच्चों के शैक्षिक विकास में आने वाली ये बाधाएं दूर होंगी। मसलन अक्षमता बच्चों के साथ होने वाला भेदभाव खत्म करने और एक बहुभाषी समाज में मूक–बधिर बच्चों में संवाद क्षमता विकसित करने के लिए विशेष हुनर अपनाया जाना चाहिए। इस मिश्रित शैक्षिकचर्या को श्रम केंद्रित शिक्षा और व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम में भी शामिल करना सुनिश्चित किया जाना जरूरी है।

काम केंद्रित इस मिश्रित किस्म की शैक्षिकचर्या के सामने एक अनूठी चुनौती यह भी है कि बिना किसी शारीरिक और मानसिक रूप में सक्षम और अक्षम का भेद किए बच्चों के बीच सहयोग–सहकार की भावना का विकास करें। इसके अलावा निम्नलिखित सरोकारों को भी ख्याल में रखना जरूरी है।

- समाज बड़े स्तर पर मानता है कि अक्षमता चिकित्सीय मामला है। इसका अर्थ है कि समाज अक्षमता को मनोवैज्ञानिक, शरीरशास्त्रीय या मस्तिष्क संबंधी किसी खामी से जोड़ता है। बिना यह जाने कि वास्तव में अक्षमता क्या है समाज मानता है कि इसके चलते व्यक्ति सामान्य आर्थिक जीवन जीने लायक नहीं रह पाता। अक्षमता के चिकित्सकीयकरण के कारण लोगों का पूरा ध्यान उसके इलाज पर लगा रहता है बजाये कि उसे ऐसे माहौल उपलब्ध कराने के जिसमें अक्षम व्यक्ति शिक्षा पा सके और उक्त कमी के बावजूद काम कर सके।

- अक्षमता आर्थिक राजनीति का परिणाम है। उत्पादन के अर्थों में अक्षम व्यक्ति का शोषण संभव है आर्थिक व्यवस्था द्वारा लगाए प्रतिबध हों। जिन लोगों का उत्पादन के साधनों पर कब्जा है, उनकी आदर्श धारणा से अलग तरह के लोग उनकी नजर में अक्षम हो सकते हैं।
- नियोक्ता हमेशा कम से कम खर्च करना चाहता है। व्यावसायिक दृष्टिकोण से किसी मूक–बधिर की सेवाएं लेने के लिए उसे सुनने की मशीन या भाषाई प्रशिक्षण देना होगा जो अतिरिक्त खर्च है। कोई भी नियोक्ता महंगे कर्मचारी नहीं रखना चाहता (जो यकीनन विकलांग ही होगा) नियोक्ता को लगता है कि अक्षम व्यक्ति की सेवाएं लेने में जिम्मेदारी ज्यादा लेनी होगी और उत्पादन का कम होगा।
- यदि एक व्यक्ति को नौकरी मिल जाती है और दूसरे को नहीं तो दूसरा व्यक्ति सामाजिक संदर्भों में अक्षम मान लिया जाता है, जिसके पीछे ऐसे हुनर का न होना हो सकता है जिन्हें कक्षा में ही सिखाया जाता है। कई बार जब हम किसी को खुद को साबित करके स्वस्थ जीवन जीने का वास्तविक मौका नहीं देना चाहते तब भी उसे अक्षम मान लिया जाता है।
- जरूरत इस बात की है कि अक्षम व्यक्ति को अलग या असहाय न समझा जाए। तभी व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम बच्चों के इस विशेष समूह के लिए लाभदायक होंगे। वास्तव में व्यवस्था का यही इतिहास है कि पहले तो वह इतने सारे बच्चों को विशेष रूप से शिक्षित करता है, फिर उन्हें जीविकोपयोगी शैक्षिक कक्षाओं में फिट कर देता है।
- हम सभी बेहतर जीवन चाहते हैं जिसके लिए बेहतर नौकरी की जरूरत होती है, इसलिए कई बार अभिभावक बिना यह जाने कि बच्चे क्या करना चाहते या क्या कर सकते हैं, उनके लिए खुद ही लक्ष्य निर्धारित कर देते हैं। ऐसे में असफल होने पर उन्हें अक्षम माना जाता है। जरूरत इस बात कि है कि अध्यापकों को इस तरह प्रशिक्षित किया जाए कि वे बच्चों को ऐसी शिक्षा दें जो यथार्थवादी, सार्थक और उत्पादक काम उपलब्ध कराने वाली हो।
- अक्षम बच्चों को अलग वर्ग में रखने और मानने की प्रवृति घातक है। ऐसा करके हम उन्हें अहसास दिलाते हैं कि उनमें कोई कमी है।

काम केंद्रित पाठ्यचर्या खासतौर पर अक्षम छात्रों के लिए स्कूल पूर्व बहुउद्देशीय और उद्देश्यपूर्ण प्रस्ताव देता है। जब इस प्रस्ताव के साथ स्कूलों में अक्षम छात्रों को अन्य मानवीय और तकनीकी सहायता दी जाए तो अधिकांश अक्षम बच्चे अपनी छिपी संभावनाओं को उजागर कर सकते हैं। सिर्फ कुछ ही छात्र ऐसे बचेंगे जिन्हें अलग स्कूल की जरूरत हो। इसके अलावा अगर अक्षम बच्चों 8–12 साल के बाद ही भाषाई शिक्षा के साथ–साथ व्यावसायिक प्रशिक्षण से भी जोड़ दिया जाए जो 12वीं के बाद की व्यावसायिक शिक्षा से बेहतर विकल्प होगा।

बुनियादी नीतिगत चुनौतियां

इस संदर्भ में हमारी सिफारिश है कि (अ) पाठ्यचर्या में उत्पादक काम की भूमिका को परिभाषित किया जाए। (ब) कई नीति स्तरीय सरोकारों के संदर्भ में व्यावसायिक शिक्षा की समीक्षा हो। उम्मीद की जानी चाहिए निम्न परिस्थितियों में इन बातों को महत्व दिया जाएगा–

- बुनियादी शिक्षा पाना 6–14 आयुवर्ग के बच्चों का मौलिक अधिकार है। (अनुच्छेद 21 ए)
- छह साल से कम उम्र के बच्चों के लिए शिक्षा और देखभाल भी मौलिक अधिकार है खासकर तब जब अनुच्छेद 21 ए और अनुच्छेद 45 को साथ पढ़ा जाए जैसा कि 1993 में सुप्रीम कोर्ट ने उन्नीकृष्णन मामले में फैसला देते हुए किया था।
- 6–14 आयुवर्ग के बच्चों के शिक्षा के मौलिक अधिकार की रक्षा कर पाने में हमारी शिक्षा नीति असफल साबित हुई है। (इस आयुवर्ग में कुल 19 करोड़ बच्चे हैं) और आईसीडीएस के अनुसार छह साल से कम उम्र के बच्चों में यह स्थिति 80 प्रतिशत के करीब है।
- एक बड़ा हिस्सा उन बच्चों का है जो बुनियादी शिक्षा तो लेते हैं लेकिन उतना नहीं सीख पाते जितनी कि उनसे उम्मीद की जाती है। (एनसीईआरटी, वर्ल्ड बैंक, 2004)
- दबे–कुचले वर्गों (अनुसूचित जाति–जनजाति के बच्चों, शारीरिक–मानसिक रूप से अक्षम, सांस्कृतिक और भाषाई अल्पसंख्यक बच्चों और लड़कियों में शिक्षा के मौलिक अधिकार का हनन सामान्य से कहीं ज्यादा है। (भारत सरकार, 2003)
- नब्बे के दशक में उदारीकरण की बयार के साथ–साथ राज्य हर बच्चे को समान शिक्षा देने की बात कहकर अपनी संवैधानिक बाध्यता से पीछे हटने लगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुमार्गीय शिक्षा सुविधा देने की बात कही गई है जो अलग–अलग वर्गों के छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराने के साथ–साथ बाजारवादी शक्तियों के लिए स्पेस भी उपलब्ध कराती है। (भारत सरकार, 2002, 2004, सद्गगोपाल 2003)
- योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों की जगह बड़ी तेजी से कम वेतन पर अप्रशिक्षित पैरा टीचर्स को रखने की प्रवृति बढ़ी है।
- राज्य ने मूल अधिकारों के मामले में वैश्विक और बाजारवादी शक्तियों को संविधान तक में हस्तक्षेप का मौका दिया है। (सदगोपाल, 2003, 2004)
- शिक्षा नीति का साझा स्कूली व्यवस्था के लिए प्रतिबद्ध होना भी एक बड़ी गलती रही है। (राष्ट्रीय फोकस समूह 1986, खंड 3.2 सद्गोपाल 2000)
- आठ साल तक सार्वभौमिक बुनियादी शिक्षा का राष्ट्रीय लक्ष्य तभी कोई मतलब रखेगा जब वह 1950 में ही घोषित हो जाता और 1960

तक अपना लक्ष्य पा लेता जैसा कि अनुच्छेद 45 में कहा गया है। लेकिन सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य बदलने का यह लक्ष्य 1960 में तो क्या उसके 44 साल बाद भी हासिल नहीं हो सका। सार्वभौम शिक्षा पहले चरण में कक्षा दस और दूसरे चरण में कक्षा बारह तक करने के तीन खास कारण थे–

(1) भारत संयुक्त राष्ट्र के बच्चों के अधिकार के उस समझौते से बंधा हुआ है जिसके अनुसार 18 साल से कम उम्र का व्यक्ति बच्चा माना जाएगा और बारहवीं तक की शिक्षा पाना उसका अधिकार है।

(2) कक्षा दस के प्रमाणपत्र के बिना केरियर या नौकरी का कोई भी विकल्प मुश्किल से ही मिलता है। यहां तक कि कई व्यावयायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम भी बारहवीं के बाद ही किए जा सकते है।

(3) बारहवीं के प्रमाणत्र के बिना अनुसूचित जाति–जनजाति के लोगों को मुश्किल से ही कोई आरक्षण की सुविधा मिल पाती है। इसका मतलब है कि 72 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 82 प्रतिशत जनजाति के उन बच्चों को जिन्हें कक्षा दस के बाद स्कूल छोड़ना पड़ता है, आरक्षण की सुविधा से वंचित रह जाते है।

इसके अलावा 1964–66 के शिक्षा आयोग ने कक्षा दस तक के सभी बच्चों के लिए साझा पाठ्यचर्या बना दी जिसे एक लोकतांत्रिक, धर्मनिरपेक्ष और समतावादी नागरिक के निर्माण के लिए जरूरी माना गया।

1986 की शिक्षा नीति ने कक्षा बारह के बाद अलग धारा के रूप में जो व्यावसायिक शिक्षा देने का कार्यक्रम बनाया, वह असफल रहा। (सन् 2000 में इन कार्यक्रमों में जहां 25 प्रतिशत छात्र थे, वहीं 2004 में उनकी संख्या घटकर कुल 5 प्रतिशत रह गई।) इस कार्यक्रम की असफलता के पांच मुख्य कारण इस प्रकार हैं–

(1) कक्षा दस तक काम केंद्रित शिक्षा के अभाव में बारहवीं के बाद व्यावसायिक शिक्षा एक तरह का खालीपन ले आती है।

(2) इसकी रूपरेखा कुछ इस तरह बनाई गई थी कि यह वैकल्पिक रोजगार गरिमापूर्ण विकल्प की जगह उच्च शिक्षा से छात्रों को विमुख करने वाले कार्यक्रम के रूप में लिया जाने लगा।

(3) अपने स्वरूप में लचीला और प्रयोगशील न होने के कारण तेजी से बदलते यथार्थ के मद्देनजर यह योजना अप्रासंगिक हो गई।

(4) बारहवीं के बाद मुख्यधारा के समानान्तर व्यावसायिक कार्यक्रम को हल्के ढंग से लिया जाने लगा और उसमें भाग लेने वाले बच्चों को छात्र और अभिभावक दोनों ही हीनभाव से देखने लगे।

(5) इस कार्यक्रम को बेहतर ढंग से चलाने के लिए पर्याप्त संसाधन कभी उपलब्ध नहीं कराए गए।

केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने शिक्षा के संदर्भ में पांच समितियों का गठन किया था (अन्य दो समितियां उच्च शिक्षा से संबंधित थी।) (1) जाति, धर्म, क्षेत्र, लिंग और भाषा के आधार पर बिना किसी भेदभाव के सभी बच्चों के लिए सही दिशा में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए 'निःशुल्क अनिवार्य

शिक्षा विधेयक 2004'। (2) एक समिति यह सुझाने के लिए बनाई गई कि साझा स्कूल व्यवस्था का किस तरह निर्माण किया जाए कि लड़कियां भी स्कूली शिक्षा में शामिल हो सकें। (3) माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की रूपरेखा तैयार करने के लिए बनी समिति। (आजादी के बाद यह पहली बार राष्ट्रीय एजेंडे मे शामिल किया गया।) (4) सांस्कृतिक एकता–अखंण्डता के लिए समिति। (5) कक्षा के भीतर और बाहर पाठ्यपुस्तकों के निर्धारण की ढांचागत व्यवस्था के लिए समिति।

फिलहाल, एनसीएफ–2000 की समीक्षा की जो कयावद चल रही है, उसमें हमें इन तथ्यों का भी ध्यान रखना होगा। नीति निर्माण में जनभागीदारी की भी जरूरत है। क्योंकि वैश्विक शक्तियां हर हाल में इसे सीमित करने के प्रयास करेंगी जैसा कि पहले सीएबीई कि रिपोर्ट के साथ हुआ।

गौरतलब है कि

- गड़बड़झाले के बावजूद सन् 2010 तक 6–14 साल के सभी बच्चों को कक्षा आठ तक की प्रारंभिक शिक्षा देना सर्वशिक्षा अभियान का लक्ष्य है।

- केरल ने जहां सबके लिए प्रारंभिक शिक्षा का लक्ष्य पा लिया है वहीं कुछ राज्य जैसे चंडीगढ़, गोवा, हिमाचल प्रदेश और पांडिचेरी तेजी से लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक और हरियाणा भी भविष्य में इसे हासिल करने की क्षमता रखते हैं।

- वैश्विकरण के दौर में राष्ट्रीय अर्थव्यस्था के मद्देनजर भारत के सामने कक्षा दस तक की शिक्षा जिसे बारहवीं तक किया जाए, सबके लिए समान करने के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

- स्कूली शिक्षा में काम और सहकारिता की भावना की पूरी तरह उपेक्षा हुई है, जिसके चलते बच्चा भविष्य की कामकाजी दुनिया का सामना नहीं कर पाता। न ही यह शिक्षा उसे हुनरमंद बनाकर सामाजिक जवाबदेही, चिंतन–मनन और रचनात्मकता की ओर प्रेरित करती है।

- व्यावसायिक शिक्षा को काम केंद्रित शिक्षा मानने की भूल नहीं करनी चाहिए। इन दोनों के उद्देश्यों के बीच के अंतर को जरूरतों को आधुनिक तकनीकी के साथ पूरी कर सके।

उपरोक्त नीतिगत सरोकारों के साथ हमारे कार्यक्रम का उद्देश्य इस प्रकार है–

(1) प्रारंभिक शिक्षा के कक्षा बारह तक श्रम केंद्रित शिक्षा। (2) उन बच्चों के लिए व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्माण जो स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद या स्कूल से निकाल दिए जाने पर जीविका के सम्मानजनक विकल्प के लए इस तरह का प्रशिक्षण लेना चाहते हैं।

पाठ्यचर्चा में कार्य की भूमिका

उत्पादक कार्य को विभिन्न शिक्षा योजनाओं में सबसे ज्यादा प्रभावशाली शैक्षिक माध्यम माना गया है। समाज से जोड़ने वाले काम के अन्य रूप भी जैसे प्रयोग, सर्वेक्षण, जमीनी अध्ययन, स्वास्थ्य और साफ–सफाई आदि भी शिक्षाचर्या का ही अंग है। हालांकि इनमें से कोई भी बौद्धिक, भावनात्मक और हुनर के विकास में उत्पादक काम की जगह नहीं ले सकता। ब्राह्मणवादी उपनिवेशवादी शिक्षा व्यवस्था उपरोक्त सभी उत्पादक काम के रूपों के किताबी विकल्प देता है। ऐसे में श्रम हाशियाकृत और मामूली लोगों की शिक्षा का आदर्श माध्यम साबित होता है। काम को शिक्षा का माध्यम बनाने से उस नस्लवादी शिक्षा व्यवस्था को भी समर्थन मिलना खत्म होगा जो समाज के विखंडन को हवा देता है। इस व्यवस्था में मूल्यांकन के मानक प्रचलित व्यवस्था में मुश्किल से ही मिलेंगे। इसमें प्रचालित परीक्षा प्रणाली इस प्रकार बनाई गई है कि उसमें अध्यापक और स्कूल दोनों ही छात्रों को श्रम केंन्द्रित शिक्षा के लक्ष्यों की ओर जाने से रोकते हैं।

प्रस्तावित किया जाता है कि काम केंद्रित पाठ्यचर्या ही वर्तमान स्कूली व्यवस्था में प्रारंभिक से लेकर बारहवीं तक की शिक्षा संरचना में बदवाब की केंद्रिय अवधारणा बने। काम को शिक्षाचर्या से जोड़ने के दो उद्देश्य हैं–

1. ऐसे ज्ञान की प्राप्ति जो बच्चे को अपनी सामाजिक परंपराओं से विमुख न करे और सामाजिक बदलाव की शक्ति बनाए।
2. मूल्यों का निर्माण और सामुदायिक श्रम व सामाजिक सक्रियता के माध्यम से अपने पैरों पर खड़ा होने लिए जरूरी बल प्रदान करे।
3. जैविक योग्यता के ढांचे के बीच बहुआयामी क्षमताओं का विकास और भूमंडलीकरण की सामाजिक–आर्थिक चुनौती के मद्देनजर जीविका उपलब्ध कराना।

बच्चा जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, पाठ्चर्या भी उतनी ही जटिल होती जाती है, लेकिन यह पर्याप्त लचीलापन भी बना रहना चाहिए। ये दोनों यानी जटिलता और लचीलापन पाठ्यचर्या के महत्वपूर्ण आयाम हैं और स्थानीयता से वैश्विकता की और के सिद्धान्त से संचालित होते हैं। इस तरह कार्यकेंद्रित पाठ्यचर्या में कक्षा दस तक साझा पाठ्यचर्या होगी। भविष्य में इसे कक्षा सात तक भी किया जा सकता है। वैसे काम केंद्रित पाठ्यचर्या को शिक्षा और मूल्यांकन के हर स्तर पर लागू किया जाना चाहिए जिसमें सार्वजनिक और प्रतियोगी परीक्षाएं भी शामिल है। इस तरह

बुनियादी लक्षण

श्रम केंद्रित शिक्षा के मार्गदर्शक इस प्रकार होंगे–

- उत्पादक काम को हर तरह के श्रम के साथ जोड़कर एक समग्र शैक्षिकचर्या तय करना।
- वास्तविक जीवन स्थितियों के बीच ज्ञान प्राप्ति के लिए, मूल्य और कौशल के विकास के लिए उत्पादक श्रम को शिक्षा का माध्यम बनाना।
- जब विषय विशेष के साथ श्रम का रिश्ता तय हो जाए तो उसके बाद बच्चों में मूल्याबोध का विकास केंद्रीय सरोकार होगा। हुनर को जीविका से जोड़ना और जटिल प्रक्रिया है लेकिन परिपक्वता के साथ उसमें लचीनापन लाना होगा।
- शिक्षा की उपनिवेशी अवधारणा के तहत बनी पाठ्यसामग्री अनावश्यक होगी। सैद्धांतिक पाठ्यसामग्री छात्र की स्थिति के मद्देनजर अध्यापक और स्कूल तय करेगा। हर स्कूल के पास संदर्भ पुस्तकों का एक समृद्ध पुस्तकालय अनिवार्य होगा। पाठ्य सामग्री अध्यापक और छात्र के बीच संवाद और समय–समय पर की गई जिज्ञासाओं के आधार पर बनाया जाएगा। वर्तमान स्कूली व्यवस्था और कलैंडर में भी बदलाव लाना होगा और उसे काम केंद्रित शिक्षा के मद्देनजर बनाना होगा। कक्षा और पीरियड की अवधारणा को और लचीला बनाकर साझा योग्यता वाले छात्रों के बीच संवाद विकसित किया जाएगा।
- इस तरह ज्ञान का मार्ग पूरी तरह खुला हुआ होगा और एक रेखीय नहीं होगा।
- अध्यापकीय शिक्षा की पाठ्यचर्या को इस सिद्धान्त के तहत बनाने की जरूरत है कि अध्यापक और छात्र दोनों की सांस्कृतिक और शैक्षिक रूपांतरण हो।
- स्कूलों के निकट 'काम स्थल' जैसी सुविधाएं जरूरी होगी। इससे तीन लाभ होंगे। पहला स्कूलों का खर्च कम होगा, छात्रों को काम की नवीनतम तकनीक की जानकारी होगी। छात्र जो भी सीखे, उसे लिपिबद्ध करेगा जिससे उसे आत्मपरीक्षण का अवसर मिलेगा। इस तरह स्कूली गतिविधियों में किसानों, कलाकारों, वैज्ञानिकों, तकनीशियनों, पशुपालकों आदि की भी भागीदारी के लिए जगह बनेगी और छात्र उनके अनुभवों का लाभ उठा सकेंगे।
- प्रचलित पाठ्यचर्या में जिस तरह स्कूल को निश्चित कक्षा और पीरियड में बांटा जाता है, उसे बदलकर पाठ्यचर्या को बहुआयामी बनाने की जरूरत है। गतिशील बच्चों के समूह को निर्धारित समय के लिए ऐसे कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए। साझा और तुलनात्मक योग्यता के आधार पर कुछ बच्चों का समूह बनाना होगा जिसमें दो बच्चों का चुनाव सीखने की इस प्रक्रिया का नेतृत्व करने के लिए किया जाएगा।
- काम केंद्रित शिक्षा का एक ऐसा कार्यक्रम भी चलाया जाना चाहिए जिससे छात्रों को स्कूल के बाहर व्यावसायिक शिक्षा का विकल्प मिले।

जैविक क्षमता

जविक क्षमता को हम शिक्षाचर्या में निहित ज्ञान की समीक्षा के रूप में लेंगे। हालांकि विश्व बाजार की शक्तियों के साथ अनेक ज्ञानरूपों के वर्ग, जाति, भाषा और नस्ल के साथ जटिल अंतर्संबंधों को नजरअदांज नहीं किया जा सकता। ऐसे में हमारे पास दो विकल्प हैं जहां हम जैविक क्षमता की अवधारणा को रख सकते हैं। पहली स्थिति में इसे काम के साथ सीखने की प्रक्रिया में छात्र की अंतरनिहित संभावनाओं के प्रकटीकरण के रूप में समझ सकते हैं। वैयक्तिक विकास इसका अनियार्य चिन्ह है। मसलन बच्चा सबसे पहले जिस दुनिया में रहता है, उसे देखता और समझता है, फिर उसके बारे में सवाल करता है और अंततः हस्तक्षेप कर उसे पुनः परिभाषित करने का प्रयास करता है। (बीजेवीजे, 1995) भारतीय दृष्टिकोण से इस पूरी प्रक्रिया में शिक्षा अंतर निहित है।

दूसरी स्थिति में व्यक्तिगत विकास प्राथमिकता में होता है और सामूहिक विकास की बात बाद में आती है। इसमें शिक्षा पद्धति सामाजिक–आर्थिक स्थितियों के अनुसार बनाई जाती है जिसके निर्धारित सांचे में बच्चा ढलकर सफलता पाता है। इसमें सामाजिक बदलाव की बात नहीं आती, बल्कि व्यक्ति खुद को समाज के अनुसार ढालता है। जब फोकस निश्चित सांचे में व्यक्तिगत विकास पर होता है तो शिक्षा में बदलाव की बात प्राथकिता में नहीं आती। दूसरी स्थिति में जैविक क्षमता की अवधारणा नीचे रहती है और कम चुनौतीपूर्ण है। इस संदर्भ में (देखें परिशिष्ट 5) जैविक क्षमता की अवधारणा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यहां तक कि अगर इसके साथ सरोकार और वैश्वीकरण, अक्षमता, श्रम, बाल श्रम, लैंगिक भेदभाव और विमुखता आदि मुद्दों को भी जोड़ दिया जाए तो बदलाव का दायरा भी काफी व्यापक हो जाएगा। तकनीकी आधारित कामस्थल पर तेजी से बदलाव के चलते अब मनुष्य को आजीवन सीखते ही रहना होगा। अगर हम सीखने की प्रक्रिया को समाज और ज्ञान के अंतरसंबंधों के रूप में लें तो शिक्षा का उद्देश्य जैविक होगा और अपनी गतिशीलता में समाज की बदलती जरूरतों से आ जुड़ेगा। यूं शिक्षा का उद्देश्य बच्चे को बेहतर नागरिक बनाकर कामस्थल पर उत्पादक जीवन जीना माना जाता है। लेकिन यहां श्रम की परिभाषा को भी समझना होगा जो शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा है, इसके बाद ही अंतरनिहित संभावनाओं के प्रकटीकरण में जैविक क्षमता सफल होती है।

'क्षमता' शब्द आमतौर पर हुनर, कुछ कर सकना आदि के संदर्भ में लिया जाता है। ये सभी अर्थ व्यक्तिवादी हैं और एक दूसरे में गड्डमड्ड करते हैं। क्षमता शब्द का अर्थ जरूरत के स्तर के अनुसार बदलता रहता है।

काम केंद्रित पाठ्यचर्या के साथ जैविक क्षमता तीन आयामों में मिलती है–

- मूल क्षमता किसी काम को करने के लिए व्यक्ति के जरूरी व्यक्तिगत गुणों से संबंध रखती है जिसमें संवेदनशीलता, सौंदर्यबोध, रचनात्मकता, चिंतन–मनन, भाषायी योग्यता,, समझने और विश्लेषण की क्षमता आदि आते हैं।

- अंतरवैयक्तिक क्षमता दो लोगों के बीच किसी

काम के सामाजिक आयाम से संबंध रखती है जिसमें सामाजिक व्यवहार, दो लोगों के बीच संवाद, दूसरे की भावना को समझना आदि आते हैं। इसी के माध्यम से प्रश्न करने की क्षमता, अपने विचारों, मूल्यों को व्यक्त करने की क्षमता और सहकारिता के साथ काम करने की क्षमता और विश्लेषण और सामाजिक जवाबदेही की क्षमता आती है।

- व्यवस्थित क्षमता का संबंध बदलते संदर्भों में किसी काम की पूरी समझ और उसे करने की योग्यता है। इसी के माध्यम से अनुमान, पुनर्पाठ और नए रास्तों की खोज होती है। इसके तहत बदली हुई पाठ्यचर्या में सीखने की क्षमता, पाठ्यचर्या में परिवर्तन के स्वागत की क्षमता और किसी की भूमिका, पहल और साहस की पुनर्व्याख्या या नए रास्ते निकालने की क्षमता आती है।

ऐसा देखा गया है कि कुछ नया करने, खोजने या अन्वेषण करने की क्षमता प्राथमिक स्कूलों के बच्चों में काफी होती है। दुनिया की वास्तविकता से परिचित कराना भी पाठ्यचर्या की प्रासंगिकता के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके लिए बहुत बड़ी तकनीक की जरूरत नहीं है। व्यक्ति अगर अपने आस–पास की दुनिया को भी देखें और महसूस हो पाएगा कि मानव अस्तित्व की हर चीज एक कलाकृति है। बच्चे चीजों को तोड़ने की जगह बनाना ज्यादा पसंद करते हैं। यह उनकी अपनी जरूरत भी है। इस तरह किसी कलाकृति या डिजायन का व्यवस्थित अध्ययन मानव की जैविक क्षमताओं और योग्यताओं के बारे में जानने का अवसर देती है। चीजों को बनाते हुए सीखना इस तरह हाथ और दिमाग दोनों को सीखने का मौका देता है जो काम केंद्रित शिक्षा का उद्देश्य है।

हस्तशिल्प जैविक क्षमता का अच्छा उदाहरण है जिसमें बच्चा एक तरह का शिल्प बनाते हुए अपनी जैविक क्षमता से उसमें कुछ नया करना चाहेगा। समस्या पूर्ति की कवायद, आपसी संवाद और टीम के नेतृत्व की क्षमता इसी जैविक क्षमता के उदाहरण हैं।

शिक्षा में काम के प्रकार

हर सभ्यता में हर आयुवर्ग के लोगों के जीवन में शिक्षा और काम को केंद्रीय दर्जा मिला हुआ है। शिक्षा में काम को तब से और ज्यादा महत्व मिलने लगा जब से इसका उपयोग जीविका के नए रास्ते तलाशने में होने लगा। यहां हम वर्तमान में उपलब्ध काम के प्रकारों पर बात करेंगे जो अध्यापकों, शिक्षाशास्त्रियों और शिक्षाचर्या का निर्माण करने वालों के लिए काम केन्द्रित शिक्षा की रूपरेखा बनाने में लाभादायक हो सकती है। लेकिन इसके लिए हमें इन तीन बातों का ख्याल रखना होगा–

1. काम का शिक्षा के माध्यम के रूप में चुनाव बच्चे के विकास की अवस्थाओं द्वारा संचालित होगा। इसमें बच्चे की मनोवैज्ञानिक उम्र, शारीरिक ताकत और कार्यकुशलता का भी खास ख्याल रखना होगा।
2. शिक्षा में काम को इस प्रकार शामिल करना

चाहिए कि उससे बच्चों में सामूहिकता की भावना और टीम विकास हो।

3. काम का जो भी बंटवारा बच्चों के लिए शिक्षा में किया जाए उसका संबंध किसी भी रूप में जाति, वर्ग, लिंग या नस्ल से नहीं होना चाहिए। कुछ लोगों के लिए खास तरह के काम निर्धारित करना असंवैधनिक है और उन्हें प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। इससे लोकतांत्रिक समतावादी और प्रज्ञावान समाज का निर्माण भी संभव नहीं है। केवल दो शैक्षिक स्थितियां ऐसी हैं जो इसका अपवाद हो सकती हैं। पहली तो यह कि अध्यापक काम केन्द्रित शिक्षा में छात्र की पृष्ठभूमि और अनुभव का लाभ लेना चाहे। दूसरी छात्र की किसी शारीरिक या मानसिक अक्षमता के कारण उसे विशेष तरह की शिक्षा देनी पड़े।

4. बच्चों से जो भी काम लिया जा रहा है, वह हर हाल में उसके भविष्य की जीविका का माध्यम बनेगा ही बनेगा, ऐसा सोचना गलत है, यहां तक कि तब भी ऐसा नहीं सोचना चाहिए जब वह बारहवीं के बाद ही व्यावसायिक शिक्षा क्यों न ले रहा हो। हालांकि वह चाहे तो भविष्य में उसे अपनी जीविका का माध्यम बना सकता है क्योंकि उसके पास उस काम का व्यावहारिक ज्ञान होता है।

5. यह सावधनी बरती जानी चाहिए कि शिक्षा के माध्यम के रूप में जो काम करवाया जाए वह हर स्तर की शिक्षा का प्रतिनिधित्व करें। यानी जैसे–जैसे बच्चे की आयु बढ़ती है, वैसे–वैसे उसकी शिक्षा भी जटिल होती जाएगी। इस प्रकार शिक्षा में काम का अनुभव बहुस्तरीय और बहुरूपीय संभव है।

इस संदर्भ में अध्यापक, शिक्षाशास्त्री और पाठ्यक्रम निर्माता इसे और खास और सार्थक बनाने के लिए निम्न टोपोलॉजी से भिन्न टोपोलॉजी बनाने के लिए भी स्वतंत्र हैं।

(अ) रोजमर्रा के जीवन का अनिवार्य हिस्सा–

(अ–1) साफ–सफाई और झाड़ू–पोंछा करना।

(अ–2) स्वास्थ्य, पोषण और स्वच्छता।

(अ–3) खाना बनाना, सेवा करना।

(अ–4) भोजन की प्रक्रिया, मसाला आदि बनाना।

(अ–5) लांड्री का काम, साबुन–डिटरजेंट बनाना।

(अ–6) दर्जीगिरी, कसीदाकारी, नक्काशी।

(अ–7) गर्भ की देखभाल, बच्चे की देखरेख।

(अ–8) बीमार और विकलांग बच्चों से संवाद।

(अ–9) बुजुर्गों की देखभाल।

(अ–10) घरेलू चीजों की मरम्मत।

(अ–11) प्रसाधन सामग्री और हर्बल दवाएं बनाना।

(अ–12) बिजली, पानी और ऊर्जा की बचत।

(अ–13) घरेलू जिम्मेदारियों में हिस्सेदारी।

(अ–14) घरेलू बजट और योजनाओं का निर्माण।

ब– प्राकृतिक आवास और निवास–

(ब–1) नर्सरी और मालीगिरी।

(ब–2) सौंदर्यीकरण

(ब–3) ईंटों–टाइलों का निर्माण।

(ब–4) मिट्टी का काम।

(ब–5) बड़ईगिरी और डिजायनिंग

(ब–6) धातुकर्म

(ब–7) प्लास्टिक का काम

(ब–8) कांच का काम

(ब–9) घर बनाना

(ब–10) पुताई करना

(ब–11) बिजली मरम्मत का काम करना

(ब–12) जल संग्रह और सिंचाई, स्वच्छ और दूषित जल का अलग प्रबन्ध।

(ब–13) नाले–नालियों की सफाई

(ब–14) पर्यावरण सुरक्षा

(ब–15) उर्जा स्त्रोतों को नवीकरण

(ब–16) आग, भुकंप, बाढ़, प्रदूषण आदि से सुरक्षा

(ब–17) खिलौने, औजार आदि का निर्माण

(ब–18) बंदरगाहों का निर्माण।

स– यातायात–

(स–1) बैलगाड़ी बनाना

(स–2) साइकिल बनाना, रिपेयर करना

(स–3) नाव बनाना, रिपेयर करना

(स–4) दो पहिया, चार पहिया वाहनों की रिपेयरिंग

(स–5) ट्रैक्टर कार आदि चलाना, उनकी रिपेयरिंग

(स–6) पैकेजिंग

(स–7) सड़क–पुल आदि का निर्माण

द– कृषि प्रक्रिया–

(द–1) खेती

(द–2) बागवानी

(द–3) पशुपालन

(द–4) मछली पालन

(द–5) मुर्गी पालन

(द–6) सुअर पालन

(द–7) डेयरी चलाना

(द–8) बीज संग्रह

(द–9) निराई–गुड़ाई और घास काटना

(द–10) पौधारोपण

(द–11) पानी की बचत और सूखा प्रबन्धन

(द–12) जंगल, वन और वन्य जीवन को बचाना

(द–13) वन्य उत्पादों का निर्माण

(द–14) औषधीय उपयोग के पौधों को उगाना

(द–15) खाद्य प्रक्रिया और उसकी पैकेजिंग

(द–16) बेकरी चलाना

(द–17) मार्केटिंग और वित्त आदि।

प– चमड़ा, टैक्सटाइल और तंतु आधार सामग्री–

(प–1) हल्के खिलौने

(प–2) सूती, ऊनी, सिंथेटिक कपड़े, बुनाई, कताई आदि।

(प–3) चमड़ा के सामानों का निर्माण

(प–4) जूट, नारियल आदि के उत्पादों का निर्माण

(प–5) डिजायनिंग और मार्केटिंग

फ– औजार और मशीने–

(फ–1) हाथ के औजार

(फ–2) पानी के काम से संबंधित औजार

(फ–3) बिजली के सामान और औजार

(फ–4) बिजली की मोटर

(फ–5) इंजन

(फ–6) लीवर, गीयर और दूसरे मशीन के दूसरे आम औजार

(फ–7) कटाई, छिलाई, वेल्डिंग आदि

(फ–8) बिजली निर्माण, सप्लाई और वितरण

(फ–9) रेडियो और दूसरे सार्वजनिक संवाद माध्यम

(फ–10) घरेलू और औद्योगिक सुरक्षा सामान

(फ–11) इलेक्ट्रोनिक, कंप्यूटर नियंत्रण व्यवस्था।

ब– सेवाएं–

(ब–1) विभिन्न चीजों की छपाई

(ब–2) बजट बनाना, अकाउंट और मूल्यांकन सेवाएं।

(ब–3) नक्शे, सर्वेक्षण और प्रोजेक्ट की योजना।

(ब–4) घर की सुरक्षा और सुधार

(ब–5) हवा, पानी और मिट्टी की जांच

(ब–6) चिकित्सकीय जांच

(ब–7) दस्तावेजीकरण

(ब–8) अनुवाद और विश्लेषण

(ब–9) पुराने रिकार्ड को संभालना, बचाना।

(ब–10) कंप्यूटरः सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर।

(ब–11) सूचना प्रौद्योगिकी तकनीकी।

(ब–12) बैंकिग, बीमा और वित्त।

भ– कला, संगीत, रंगमंच–

(भ–1) संगीत के यंत्र बनाना

(भ–2) परंपरागत हस्तकारी

(भ–3) मिट्टी के बर्तन, खिलौने, शिल्प, ग्राफिक्स आदि।

(भ–4) आभूषणों का निर्माण

(भ–5) घटना प्रबन्धन

म– स्वास्थ्य, लेख और शारिक शिक्षा–

(म–1) सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएं

(म–2) दाईगिरी

(म–3) अपने शरीर, यौनिकता और प्रजनन संबंधी जागरूकता और जानकारी

(म–4) जीविका और स्वास्थ्य समस्याएं।

(म–5) स्वास्थ्य संबंधी औजारों का निर्माण।

(म–6) प्राथमिक उपचार सेवा

(म–7) चिकित्सा प्रौद्योगिकी।

य– सामुदयिक काम और सामाजिक सक्रियता–

(य–1) स्थानीय इतिहास का अध्ययन

(य–2) कुपोषण और उसके कारणों का जमीनी अध्ययन

(य–3) जीविका, तकनीकी और हुनर, कामशक्ति, प्राकृतिक संसाधन, आवास, यातायात, जैव विविधता, जल और ऊर्जा के स्त्रोत आदि से संबंधित स्थानीय अध्ययन।

(य–4) पंचायतों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और जिला विकास विभाग, बैंक, कोर्ट, नगर पालिका आदि से संवाद और उनका अध्ययन।

(य–5) सामाजिक संतोष और शक्ति संरचना, स्त्रियों को लेकर लैंगिक असमानता और भेदभाव, वयस्कों के परिप्रेक्ष्य में बचपन, काम से बच्चे का संबंध व अधिकारों की स्थिति आदि का जमीनी अध्ययन।

(य–6) स्थानीय निकायों, शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा की

स्थिति, योजनाएं, स्कूलों के प्रकार, उसमें विभिन्न वर्गों की भागीदारी, सामाजिक विकास में उनके योगदान आदि का जमीनी अध्ययन।

(य–7) टीकाकरण अभियान, स्वास्थ्य जांच, असमानता, भूमि सुधार के रिकार्ड, सूचना के अधिकार, स्त्रियों और दूसरे वर्गों के सामाजिक सांस्कृतिक अधिकारों के अभियान में सकारात्मक भागीदारी और अध्ययन।

(य–8) विज्ञान और तकनीकी आधारित सामुदायिक सेवाएं, बालवाड़ी जैसी योजनाओं को सहयोग, बुनियादी शिक्षा का सार्वभौमीकरण, अक्षम बच्चों को सहयोग आदि।

(य–9) स्थानीय लोकगीतों, लोककथाओं का दस्तावेजीबरण।

(य–10) स्त्रियों, बच्चों और दलितों–अल्पसंख्यकों के खिलाफ दंगों, आपदाओं, हिंसक वारदातों आदि का अध्ययन।

शिक्षा में श्रम को स्थापित करने का एक जतन

नंदकुमार

नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य में स्कूली शिक्षा का ताना–बाना बुना जा रहा है। शिक्षक प्रशिक्षण, पुस्तक लेखन वगैरह ये सब शिक्षा में गुणात्मक सुधार की दिशा में किए जा रहे प्रयास हैं। छत्तीसगढ़ एससीईआरटी ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 पर सार्थक बहस करवाई और इसको अनुशंसाओं पर अमल भी किया जा रहा है। छत्तीसगढ़ में स्कूली शिक्षा में श्रम को स्थापित करने के प्रति भी काफी गंभीरता से सोचा जा रहा है।

आज स्कूलों में पढ़ने के बाद छात्र जीवन में कुछ नहीं कर पाते। बारहवीं तक पढ़ाई पूर्ण हो जाने के बाद सोचना शुरू होता है कि आगे क्या करें। आज की पाठ्यचर्या बच्चों को भावी जिंदगी की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बारे में कोई दिशा नहीं देती। यदि बच्चा बीच में स्कूल छोड़ देता है तब तो वह बिल्कुल काम का नहीं रह जाता। गांवों में पालक अक्सर यह कहते हुए मिलते हैं कि स्कूल के बाद बच्चा कहीं का नहीं रह जाता।

स्कूली शिक्षा को इन सभी पहलुओं के उपाय खोजना होगा। बच्चों को शुरू से ही लक्ष्य निर्धारण हेतु प्रेरित करना होगा। यह कवायद पहली कक्षा से ही शुरू हो सकती है। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों से यह पूछा जाना आवश्यक होगा कि बड़े होकर क्या बनना चाहते हो। उन्हें भावी जीवन के बारे में सपना संजोना सिखाना पड़ेगा। शुरू में बच्चे अपने वातावरण में जो व्यक्ति या काम अच्छा लगता हो उसके बारे में बालेंगे, परंतु एक सोच की शुरूआत हो जाएगी। यह सोच कि आगे कुछ करना है, कुछ बनना है। जब कुछ बनने की इच्छा जागृत होगी, तब वह उसके लिए प्रयासरत हो जाएगा। उसके जीवन में भटकाव कम हो जाएगा। मिडिल स्कूल में पहुंचने पर बच्चों को कैरियर गाइडेंस दिया जाए। इस हेतु एक ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाए जिसमें आज के जगत में उपलब्ध विभिन्न व्यवसायों का विवरण हो। डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रोग्रामर, वित्तीय विश्लेषक, प्रबंधक, शिक्षक, सेल्समैन, क्लर्क, डाटा एंट्री आपरेटर, स्टोनो, टायपिस्ट, इलेक्ट्रिशियन, मोटर मैकेनिक, राजमिस्त्री, बैरा, केश कर्तन, बढ़ई, प्लंबर, ड्राईवर, चपरासी इत्यादि। इन सभी कार्यों के लिए किन–किन विषयों में परांगत होना आवश्यक है, उन विषयों में पारंगत होने के लिए किस दिशा में कितनी मेहनत करनी होगी। उद्यमिता के लिए आवश्यक कला एवं कौशलों के बारे में भी मिडिल स्कूल स्तर पर ही बताया जाना चाहिए। कोई भी कार्य हो, कठिन परिश्रम के अलावा कोई चारा नहीं है। यह हर एक जगह दिखते रहना चाहिए। ऐसा करने से बच्चों के भावी सपनों में रंग भरेंगे। जीवन लक्ष्य अधिक स्पष्ट होगा। उन्हें दूरगामी लक्ष्य निर्धारण के बारे में भी बताया जाना चाहिए ताकि तैयारी के लिए भरपूर समय मिले। कोई बच्चा यदि इंजिनियर बनना चाहता है तो यह लक्ष्य निर्धारण कक्षा छठी, सातवीं या आठवीं में ही हो जाना चाहिए, बनिस्बत कि वह बारहवीं पास होने के बाद सोचना शुरू करें। छठी

से सोचना शुरू करने पर उसके पास कमजोर विषयों को भी तैयार करने के लिए पर्याप्त समय होगा। 5–6 वर्षों में गणित जैसे विषय को भी तैयार किया जा सकता है। बच्चों को यह भी विश्वास दिलाना होगा कि वे चाहें तो कुछ भी कठिन नहीं होता। मिडिल स्कूल में जीवन लक्ष्य निर्धारण तथा कैरियर गाइडेंस के अलावा रोजमर्रा के जीवन की कला सिखाना भी आवश्यक है। जैसे कील कैसे ठोंके, फ्यूज़ उड़ जाने पर कैसे ठीक करें, अच्छा काम मतलब क्या, हम काम क्यों करें, स्वच्छता का महत्व, स्वच्छ कैसे रहें, चाय बनाना, खाना बनाना इत्यादि। इसके साथ–साथ साइड बिजनेस जैसे कार्यों की भी मिडिल स्कूल से ही शुरूआत की जा सकती है। जैसे सिलाई, कढ़ाई, कशीदाकारी, चाक बनाना, मोमबत्ती बनाना, अगरबत्ती बनाना, मशरूम की खेती, मधुमक्खी पालन इत्यादि। इस तरह से मिडिल स्कूल में मीनू परोसा जाए। इसका अर्थ यह भी कि हम हठ न धरें कि हम जो सिखाना चाहते हैं, वह सभी बच्चे सीखें। इन सबका उद्देश्य यह हो कि बच्चों को पता रहे कि दुनिया में यह बस होता है। अच्छे जीवन की कला तथा कुछ छोटे–मोटे व्यवसायों से परिचय... बस इतना ही। माध्यमिक स्कूल में कुछ व्यवसायों पर हाथ साफ करना सिखाएं। यहां भी उस व्यवसाय में पारंगत होना आवश्यक नहीं है। 9 वीं तथा 10 वीं इन दोनों वर्षों में बच्चा 6 से 8 व्यवसाय सीखें। इसका उद्देश्य होगा बहुकौशल (मल्टी स्किलिंग) विकास। पिछले कुछ वर्षों से दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है। आगे बदलाव की गति और भी तेज होने वाली है अब कोई एक कौशल सीखकर उसी के भरोसे संपूर्ण जीवन जीने का जमाना नहीं रहा। इसकी जानकारी बच्चों को लगातार देते रहना होगा। मैनेजमेंट गुरू पीटर डकर ने कहा है– स्थायी नौकरी का जमाना लद चुका, केवल स्थानीय नौकरी योग्य संभव है। इसका अर्थ कि यदि एक कौशल में आय होना बंद हो गई तो दूसरा कौशल सीखें जिससे आय हो। माध्यमिक स्कूल का उद्देश्य बहु–कौशल का निर्माण हो। वह विकसित करना कठिन कार्य नहीं, यह हो तथा साथ ही मीनू के बाद स्टार्टर का भी काम करे। उच्चतर माध्यमिक स्कूल पहुंचने तक बच्चे अपने जीवन लक्ष्यों के बारे में बहुत हद तक स्पष्ट हो चुके होंगे। वे अपनी इच्छा–आकांक्षा के साथ–साथ अपनी योग्यता को भी पहचान चुके होंगे। ग्यारहवीं में विषय चयन के पूर्व बेस्ट जाब फिट के लिए काउंसेलिंग के रूप में कुछ व्याख्यान भी आयोजित किए जाएं। ग्यारहवीं–बारहवीं में कार्यजगत के विषय वैकल्पिक हों। चूंकि छत्तीसगढ़ में धान की कृषि बहुतायत में है। इसलिए खेती एक स्थायी विषयवस्तु के रूप में रहे। इसका उद्देश्य धान की उत्पादकता बढ़ाना तथा मोनोक्रापिंग के लाभ के बारे में हो। शालाओं में उपलब्ध सुविधाएं उनका जीवन सीमित न करें। यदि गांव में मोटर रिपयर की दुकान हो तो मोटर मैकेनिक कक्षा के बच्चों के लिए वह प्रयोगशाला का कार्य करे। खेतों को प्रयोगशाला बनाया जाए। गांव के कुशल कारीगर प्रायोगिक शिक्षण हेतु कार्य करें। शिक्षक तथा पुस्तक सैद्धान्तिक शिक्षण हेतु कार्य करें। शालाओं में भी कुछ सुविधाएं बढ़ायी जाए। परंतु सभी शिक्षकों को प्रशिक्षण तथा सभी स्कूलों में समृद्ध पुस्तकालय अति आवश्यक होगा। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की परीक्षा प्रत्येक तीन माह में हो। बच्चे कोई एक व्यवसाय सीखें और परीक्षा दें। पास हो जाने पर वह विषय समाप्त। अगली तिमाही के लिए नया विषय। परीक्षा लेने हेतु ओपन यूनिवर्सिटी जैसी कोई व्यवस्था हो। स्कूल या स्कूल शिक्षा विभाग के बाहर का परीक्षा तंत्र हो।

नन्द कुमार, स्कूल शिक्षा विभाग, छत्तीसगढ़ शासन सचिव हैं।

कार्य और शिक्षा
(Work and Education)

आयोजक : राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, रायपुर (छत्तीसगढ़)

के. आर. शर्मा

दिनांक 4 व 5 जुलाई 2007 को रायपुर में राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा 'कार्य को शिक्षा तंत्र में स्थापित करने के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में कार्य और शिक्षा पर स्कूली शिक्षा के संदर्भ में छत्तीसगढ़ राज्य के लिए एक समग्र नीति बनाने का लक्ष्य रखा गया था। उल्लेखनीय है कि नवगठित छत्तीसगढ़ राज्य में स्कूली शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए सक्रिय प्रयास किए जा रहे हैं। स्कूली शिक्षा में काम को कैसे स्थान मिले, छात्रों में श्रम के प्रति सम्मान पनपे तथा कार्य और शिक्षा में भी समवाय (सामंजस्य) बने इन सब मसलों पर चर्चा हुई और राज्यव्यापी नीति निर्धारण बनाने पर विचार किया गया।

उल्लेखनीय है कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की अनुशंसा के अनुरूप म. प्र. में (तब छत्तीसगढ़ अविभाजित म.प्र. राज्य का ही हिस्सा था) व्यावसायिक शिक्षा 1989 में लागू की गई थी। वर्तमान में व्यावसायिक शिक्षा केवल कक्षा बारहवीं स्तर पर ही दी जाती है। और उसमें भी वह एक विशिष्ट धारा है जिसे अकादमिक धारा के समांतर रखा जाता है। पिछले कई सालों से इस कार्यक्रम को अनेक सैद्धान्तिक, प्रबंधकीय और संसाधन संबंधी बाधाओं से गुजरना पड़ रहा है और वर्तमान में इसे निम्नतर धारा के रूप में देखा जाता है। अतः छत्तीसगढ़ शासन शिक्षा विभाग की मंशा है कि इस पाठ्यक्रम को एक अतिविशाल और गतिशील कार्यक्रम बनाया जाना है। इस पर भी विचार किया गया कि प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर काम पर आधारित शिक्षा का ताना–बाना कैसे बुना जा सकता है।

इस कार्यशाला का आयोजित करने के पीछे जो समझ रही है वो इस प्रकार है–

- व्यावसायिक पाठ्यक्रम के लिए राज्य नीति का निर्धारण।
- व्यावसायिक पाठ्यक्रम को 6 औद्योगिक जिलों के स्कूलों में पायलेट प्रोजेक्ट के रूप में लागू करने के लिए आवश्यक मार्केट सर्वे का रोड़ मैप तैयार करना।
- व्यावसायिक पाठ्यक्रम पूर्व माध्यमिक स्कूलों में कैसे लागू किया जाए?
- इस पूरी योजना के लिए कौन–कौनसे निकायों की मदद ली जाए।
- व्यावसायिक पाठ्यक्रम से संबंधित अन्य आशंकाओं को दूर करना।

अब तक जो व्यावसायिक शिक्षा चल रही थी उसकी समीक्षा की गई। समीक्षा में यह बात उभर कर आई कि कक्षा 12 वीं के स्तर पर जो ट्रेड्स चलाए जा रहे हैं वे यहां की परिस्थितियों के कितने अनुकूल हैं। यहां क्या जरूरत है इसको ध्यान में रखकर व्यावसायिक पाठ्यक्रम का मसौदा तैयार करना चाहिए।

पूर्व माध्यमिक स्तर तक छात्रों से क्या कार्य करवाया जाएं, इस मसले पर विचार किया गया। सभी सदस्यों की राय यह बनी कि पूर्व माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के बजाय कुछ ऐसी व्यवस्था हो कि बच्चों को हाथों से काम करने के मौके मिले। इस स्तर पर यह संभव नहीं होगा कि बच्चों को मुख्य धारा की पढ़ाई के साथ–साथ ट्रेड्स प्रणाली से व्यावसायिक शिक्षा दी जाए।

इस पर आम सहमति बनती दिखी कि मुख्य धारा की शिक्षा में 'काम' को स्थापित किया जाए। कक्षा 8 वीं तक बच्चों को ऐसे काम करने के मौके उपलब्ध कराए जाएं जिससे कि–

– विज्ञान, गणित के सिद्धान्त आदि समझने में आसानी हो।

– श्रम के प्रति सम्मान पैदा हो।

– काम के माध्यम से उनमें सृजनशीलता का विकास हो।

– जीवन से जुड़ाव हो।

समझ यह बनी कि जो भी काम करवाया जाए वह कर्मकांड न बने।

पूर्व माध्यमिक स्तर पर क्या–क्या काम करवाए जा सकते हैं उसकी एक विस्तृत सूची बनाई गई।

उल्लेलख है कि नेशनल करिकुलर फ्रेमवर्क 2005 में कार्य और शिक्षा को जोड़ने की अनुशंसा की गई है। पूर्व माध्यमिक स्तर पर काम और शिक्षा के तालमेल को इस संदर्भ में भी देखा जा रहा है।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के संचालक नंद कुमार ने सुझाव दिया कि कक्षा 10 वीं तक के पाठ्यक्रम में जीवन जीने के लिए जरूरी कौशलों को शामिल किया जाना चाहिए। इन कौशलों के सहारे बच्चो फिर आगे बढ़े। कक्षा 10 वीं तक बच्चों को कार्य क्षेत्र बताए जाएं।

इसके कार्यशाला में कुछ मसले उभरकर आए कि शिक्षकों की क्या व्यवस्था होगी? साथ ही कार्य और शिक्षा के समन्वय के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था होगी? इन सब मसलों पर ठोस रणनीति बनाने की जरूरत है। तत्पश्चात छत्तीसगढ़ राज्य के संदर्भ में व्यावसायिक शिक्षा को लेकर नीति बनाने पर भी विचार किया गया।

अब तक व्यावसायिक शिक्षा के चलाए जा रहे ट्रेड्स पर पुनर्विचार करने की जरूरत है। यह देखा गया कि कुछ ट्रेड्स में छात्रों ने कोई दिलचस्पी नहीं ली। कुछ ट्रेड्स व्यवस्थागत कारणों से बंद थे, उन पर भी नए सिरे से सोचने की जरूरत है।

कुल मिलाकर इस कार्यशाला में कार्य और शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा को लेकर स्पष्टता बन पाई और नीति–निर्धारण का प्रस्तावित मसौदा कुछ हद तक तैयार हो सका।

के. आर. शर्मा, बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश की संपादन प्रक्रिया में संलग्न।

ग्रीष्मकालीन शिविर-2007

ललित पालीवाल

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि द्वारा हर वर्ष ग्रीष्मकालीन अवकाश में विद्यार्थियों, ग्रामीण महिलाओं, नवयुवकों के लिए एक माह के शिविर का आयोजन किया जाता है। विद्यार्थियों की ग्रीष्मावकाश में विभिन्न कलाओं, स्वस्थ मनोरंजन एवं सृजनात्मकता के अवसर प्रदान करने की दृष्टि से स्थानीय विद्यालय में 17 मई से 16 जून 2007 तक शिविर आयोजित किया गया।

शिविर का ताना–बाना इस प्रकार बुना गया कि न तो कोई भाषणबाजी हो और न ही कोई औपचारिकताएं हो बल्कि भाग लेने वाले शिविरार्थियों की भावनाओं को पूरी तरह से तव्वजौ मिले। अपेक्षा यही होती है कि वे ऐसा कुछ सीखें जो उनकी जिदंगी से जुड़े। इस शिविर में हाथ से ज्यादा कार्य करने का अवसर दिया गया। यह देखने में आता है कि ग्रीष्मावकाश होने से विद्यार्थी अपना समय सोने या इधर–उधर घुमने में व्यर्थ करते है। इस समय का सदुपयोग हो, इस उद्देश्य से विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय रामगिरि ने 1 माह के शिविर का आयोजन किया।

शिविर में चलाई विभिन्न गतिविधियां

1. ब्यूटी कल्चर 2. सॉफ्ट टॉयज् 3. सिलाई 4. घरेलु विद्युत उपकरणों की मरम्मत एवं रख–रखाव 5. खाद्य प्रसंस्करण 6. हस्तनिर्मित कागज से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाना। 7. पेन्ट वार्निश एवं सुथारी 8. मोतियों से ज्वैलरी बनाना।

इस वर्ष नया काम शुरू किया गया मोतियों से ज्वैलरी बनाना। इन सभी गतिविधियों में 130 छात्र छात्राओं, महिलाओं ने भाग लिया। जिसमें स्थानीय विद्यालय तथा आसपास के 15 गांवों व 20 विद्यालयों के विद्यार्थियों एवं महिलाऐं भी थी। जिन गांवों का शिविर में प्रतिनिधित्व रहा उनके नाम इस प्रकार हैं।

1. बड़गांव 2. सबलपुरा 3. कटारा 4. मनोहपुरा 5. मण्डोपी 6. कविता 7. देवाली 8. चिकलवास 9. सुखेर 10. लोयरा 11. थूर 12. रामगिरि 13. पालड़ी 14. मदार 15. राठाड़ों का गुड़ा

हमने कड़ी से कड़ी जोड़ते हुए एक श्रृंखला बनाई तथा आसपास के 15 गाँवों एवं 20 विद्यालयों के विद्यार्थियों को जोड़ने का काम शिविर के माध्यम से किया। साथ ही निराश्रित बाल सेवागृह जीवन ज्योति सुखेर एवं सम्पर्क संस्थान झाबुआ, मध्यप्रदेश के 50 विद्यार्थी एवं 1 अध्यापक ने भी प्रशिक्षण प्राप्त किया। झाबुआ से आए बच्चों ने कागज प्रोडक्ट व कम्प्यूटर शिक्षा का भी प्रशिक्षण प्राप्त किया।

ग्रीष्मकालीन शिविर के दौरान शिविरार्थियों ने मदार नहर की सफाई की। दिनांक 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाया गया। विद्यालय में नीम के पौधे लगाए गए। शिविर के अंतिम दिन तैयार की गई वस्तुओं की प्रदर्शनी लगाई गई। इस प्रदर्शनी का संभागी विद्यार्थियों के अभिभावकों, शिक्षा से जुड़े लोगों व उदयपुर जिला कलेक्टर शिखर अग्रवाल ने अवलोकन किया। समापन के अवसर पर प्रतिभागियों ने अपने अनुभवों का प्रस्तुतीकरण किया। शिविर में भाग लेने वाले प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण पत्र भी प्रदान किए गए।

ललित पालीवाल, शिविर संयोजक, विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर

शिविर -2007

हमने बहुत कुछ सीखा

गणेश लाल मीणा

जब हमारी वार्षिक परीक्षा खत्म हुई तब हम होस्टल में ही रह रहे थे। फिर मेडम ने हमको बुलाया और सब को इकट्ठा किया। फिर मेडम ने हमको ग्रीष्मकालीन शिविर के बारे में बताया और मेडम ने कहा कि बस में जाना है और बस में आना है। फिर मेडम ने कहा कि ये शिविर 17 मई से 16 जून तक चलेगा। मेडम ने हमको सब बता दिया फिर हम विद्या भवन बेसिक स्कूल में आए। सबसे पहले हम बड़ के पेड़ के नीचे बैठे फिर मेडम ने हमको शिविर के बारे में बताया। मेडम ने कहा कि सभी अलग–अलग गतिविधियां है। आप जिसमें जाना चाहो उसमें जा सकते हो। फिर मेडम ने अलग–अलग गतिविधि वाले सर से मिलवाया। मेडम ने हमको 5 मिनट का समय दिया। और

कहा कि तुम्हें जिस गतिविधि में जाना है 5 मिनट में सोच लो।

फिर सभी बच्चों ने अपनी–अपनी गतिविधि चुन ली। मैंने तो सुथारी में भाग लिया क्योंकि सुथारी में पिछले साल भी रहा था। सुथारी मुझे अच्छा लगता है। मैं सुथारी में आया तो सबसे पहले इन्दर सर से हमारा परिचय किया। फिर हाजरी में हमारा नाम लिखा। सर ने हमको औजार के बारे में बताया। औजार के नाम व चित्र बनाए। फिर औजारों को पकड़ना और चलाना, तीखा करना, टेप से नापना, रन्दा चलाना, फाइल कील लगाना, गुणिया का उपयोग ये सब हमें इन्दर सर ने सिखाया। फिर सर ने हमको औजारों की सावधानियां भी बताई। फिर सर ने कहा कि अपन सबसे पहले चाबी स्टेंड बनाएंगे। एक प्लास्टिक की चाबी स्टेंड लाये और उसको लकड़ी के ऊपर बनाया। हमने जिक्सा मशीन से काटना था, हमें आता नहीं था फिर सर ने हमको सिखाया। फिर हमको लकड़ी काटना भी नहीं आता था। हम जब लकड़ी काटते थे तब लकड़ी टेढ़ी हो जाती थी। सर ने कहा कि आरी सीधी रखो और फिर हमको पेन स्टेंड बनाने के लिए कहा था। फिर सर ने निशान बनाये और हमने उसको काटा। कट जाने के बाद सर ने हमको कैसे बनाते हैं वो सिखाया। सर ने छोटी लकड़ी ली और उसको फेविकॉल से चिपकाया। और फिर कीलें लगाई मगर कीलें बार–बार टेढ़ी हो रही थी। सर ने कहा उसको सीधा रखकर धीरे–धीरे कील को मारो फिर हमने ऐसा किया फिर हमने पेन स्टेंड बन गया। फिर सर ने हमको मछली, घोड़ा, टाईगर, मोर, पेरोट, बतख आदि बनाए। जिप्सा मशीन से काटने में डर लग रहा था कि कहीं हाथ नहीं कट जाए। फिर ध्ीरे–धीरे हमने मशीन से काटना सीखा और हमने जूता स्टेंड की रिपेरिंग की, ट्रे बनाए और धोवना बेट भी बनाए। लकड़ी के किनारे फट रहे थे तो हमने उसको लकड़ी के बुरादा और फेविकॉल को मिलाकर चिपका दिया। और जो चीज़ हमने बनाई उसके हमने फाइल से घीसकर अच्छा बना दिया। इन्दर सर ने जिक्सा मशीन से हुक लगाना सिखाया। और गुणिया से नापना भी सिखाया कैसे नापते हैं, कितना सेंटीमीटर लेते हैं। सर ने हमको रंदा भी चलाना सिखाया। सब चीज तैयार होने के बाद सर ने कलर करने को कहा। हमने ब्रश से कलर किया। सर ने चाबी स्टेंड पर कलर अच्छा किया। हमारे पास पूरे सामान नहीं आए थे। हमारे पास काला कलर और पीला कलर, सिल्वर कलर तीन कलर थे। हमने सब कलर को मिलाकर कलर बनाए और फिर तोते, घोड़ा, टाईगर, मछली आदि पर हमने कलर किया। हमें पता नहीं था कि चाबी स्टेंड इतना सुन्दर बनेगा। हमने घोड़ा पर भी इतना सुन्दर कलर किया कि जैसे किसी पेन्टर ने कलर किये हो। हमने बहुत कुछ सीखा।

गणेश लाल मीणा, सुखेर निराश्रित ग्रह होस्टल में रहकर अध्ययन कर रहे हैं। गणेशलाल मीणा ने जैसा लिखा उसमें हमने बहुत कम बदलाव किया है। –संपादक

चरित्र निर्माण हेतु सर्व धर्म समभाव

वि.वि. सिंह

विद्या भवन सोसायटी प्रारंभ से ही गांधी विचार धारा को स्थापित करने का प्रयास करता रहा है। स्कूल में ऐसे कई सारे काम बच्चों से करवाए जाते थे। इस कड़ी को आगे बढ़ाते हुए श्रीमती वि.वि. सिंह अपने अनुभवों को बांट रही है–

गांधीजी के अनुसार, ''शिक्षा का अर्थ अक्षर ज्ञान नहीं बल्कि चरित्र का विकास और धर्म भावना का भान है'', इस उद्देश्य पर ज़ोर देकर गांधीजी ने धर्म एवं नीति की आवश्यकता प्रतिपादित की है। नई तालीम का आधार उन्होंने सत्य और अहिंसा बताया।

वर्धा शिक्षा योजना में धार्मिक शिक्षा का कोई निश्चित स्थान नहीं है। वर्धा योजना में धर्म शिक्षा का प्रबन्ध न होने के कारण उन्होंने स्पष्ट किये थे, ''हमने वर्धा शिक्षा योजना में धार्मिक शिक्षा को इसलिए स्थान नहीं दिया कि आजकल जिस प्रकार धर्म सिखलाए तथा अमल में लाए जाते हैं, उससे एकता के बजाय झगड़ा ही पैदा होता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि वे तत्व जो सब धर्मों में समान हैं, हर एक बालक को सिखाए जाने चाहिए।''

गांधी जी प्रार्थना को आत्मशुद्धि और आत्मनिरीक्षण के लिए आवश्यक समझते थे। वे दैनिक प्रार्थना की अनिवार्यता पर विश्वास करते थे।

भारत में अनेक धर्म प्रचलित हैं। विभिन्न धार्मिक त्यौहारों पर अवकाश भी रहता है। विभिन्न धर्मों, धार्मिक महापुरूषों, त्यौहारों आदि से संबन्धित पाठ भी सामाजिक ज्ञान एवं हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित होते हैं। विद्यार्थीगण भिन्न–भिन्न धर्मों के बारे में स्वयं जानकारी प्राप्त करें विभिन्न धर्मों की अच्छी बातों को ग्रहण करें, यह निश्चित रूप से चरित्र निर्माण में सहायक होगा।

इस विचार की क्रियान्विति स्वरूप विद्या भवन जूनियर स्कूल में हम लोगों ने यह तय किया कि विद्यार्थी विभिन्न धमों व उनसे जुड़े त्यौहारों, महापुरूषों व उनकी शिक्षाओं आदि की अधिक जानकारी प्राप्त करें। इस पर एक प्रोजेक्ट के रूप में काम किया जाए। यह किस प्रकार संभव हुआ इस बारे में चर्चा करना चाहूंगी।

सत्र आरम्भ होने के पश्चात् सर्वप्रथम जन्माष्टमी का आयोजन किया गया। स्कूल में विद्यमान 5 हाउसेज़ में से एक हाउस को इसके आयोजन का दायित्व सौंपा गया। उन्हें एक भित्ति पत्रिका भी तैयार करनी थी। कक्षा 5 के विद्यार्थियों ने पुस्तकालय में जाकर कृष्ण के जन्म, विभिन्न लीलाओं, द्वारिकाधीश के रूप में कृष्ण, कुरुक्षेत्र में कृष्ण की भूमिका, गीता के उपदेश, सूरदास के पद, मीरा बाई के भजन आदि संकलित कर लिये। गृहकार्य के लिए उन्हें कहा गया कि कृष्ण के जितने नाम प्रचलित हैं, स्वयं पता करके उनको अपनी कॉपी में लिखें।

बच्चों ने इस कार्य में बहुत रुचि ली। कहीं–कहीं से पढ़कर, नाम ढूंढकर, घर पर अपने बड़ों से पूछकर एक लम्बी चौड़ी सूची तैयार कर ली। दो शीट्स की बड़ी सुन्दर पत्रिका तैयार हुई, जिसमें बच्चों ने चित्रकारी भी की हुई थी। एक शीट में एक ओर प्रतीकात्मक रूप से मोर पंख को चिपकाया गया था। कुछ बच्चों ने इसमें सक्रिय भूमिका अदा की थी। बाकी सभी बच्चे उसे पढ़कर लाभान्वित हुए और उनकी जानकारी बढ़ी।

हाउस के बच्चों ने प्रार्थना सभा कक्ष के एक कोने में बड़ी सुन्दर झांकी तैयार की जो एक दिन पूर्व तैयार थी। एक जंगल सा बनाकर वहां गाएं खड़ी की गई। एक थाली को जमाकर उसके किनारे गीली मिट्टी से ढककर, उसमें पानी भरा था और छोटी–छोटी मछलियां उसमें तैराई गई थीं। एक ओर एक पेड़ के नीचे कृष्ण की बांसुरी बजाते हुए मिट्टी की मूर्ति रखी थी। कुछ चित्र दीवार पर टंगे थे। एक गत्ते के डिब्बे को एक ओर से लम्बी–लम्बी धारियों में काटकर जेल की सलाखें बनाई गई थी और उसके अन्दर कृष्ण जन्म का चित्र गत्ता लगाकर खड़ा किया हुआ था।

प्रार्थना सभा में बच्चों ने कृष्ण से सम्बन्धित प्रसंग प्रस्तुत किए। सूरदास के पद गाये। एक शिक्षिका ने गीता के कुछ श्लोक बोलकर उनका भावार्थ स्पष्ट किया।

प्रसाद वितरण की भी व्यवस्था की गई थी। पंजीरी व कटे हुए फल पत्तों से बने दोनों में रखे थे। तुलसी पत्र भी उसमें सम्मिलित था।

अगला आयोजन ईद का था। बच्चों को प्रार्थना सभा में यह जानकारी दी गई। बच्चों ने स्वयं ही ईद मनाने के कारण, तरीके, इस्लाम धर्म, उसकी शिक्षाएं, मोहम्मद साहब की जीवनी, कुरान शरीफ आदि के बारे में सामग्री एकत्र की। उन्हें शीट्स पर लिखा। कुछ ने मौखिक रूप से प्रार्थना सभा में प्रस्तुत किया। कुछ बच्चे सफेद पजामा कुर्त्ता पहनकर आए और उन्होंने गले मिलकर 'ईद मुबारक' कहा। अन्य बच्चों ने भी एक दूसरे को मुबारकबाद दिया। ईद के त्यौहार के एक दिन पश्चात् यह आयोजन किया गया था। एक मस्जिद में जाने की स्वीकृति भी प्राप्त कर ली गई। सभी बच्चे मस्जिद में गए और उन्होंने अपेक्षित जानकारी प्राप्त की। वापस आने पर उन्हें भोजनावकाश में अपने टिफिन में लाए भोजन के साथ मीठी सेवइयां प्रदान की गई, जिसका ईद पर विशेष प्रचलन है।

एक धर्म विशेष के बारे में जानकारी प्राप्त करने के अलावा एक बड़ा फायदा यह हुआ कि सभी बच्चे मस्जिद में जा सके जिनमें से अधिकांश पहले कभी नहीं गए थे और शायद आगे भी कभी उनका जाना न होता।

25 दिसम्बर 'बड़ा दिन' के रूप में मनाया जाता है। बच्चों ने ईसाई धर्म के बारे में पाठ पढ़ा हुआ था। विद्यालय में जो गतिविधियां सम्पन्न हईं वे इस प्रकार थीं –

1. बच्चों ने मेरी क्रिसमस के कार्ड्स तैयार किए, जिन्हें प्रदर्शित किया गया।
2. प्रार्थना सभा कक्ष में एक ओर ईसा मसीह के जीवन से सम्बन्धित झांकी बनाई गई।
3. 'क्रिसमस ट्री' बनाकर उसमें बेल (घंटी) लट्टू, तारे आदि टांगे गए।
4. कुछ बड़े स्टार गत्ते के काट कर उन पर सिल्वर पेपर चिपकाया गया और टांगा गया।
5. भित्ति पत्रिका तैयार की गई जिसमें संक्षेप में ईसा मसीह की जीवनी, शिक्षाएं, बाइबिल के

बारे में जानकारी थी, कुछ चित्र भी काटकर चिपकाए गए थे।

6. एक मिशनरी स्कूल में स्थित चर्च को देखने की अनुमति लेकर सभी विद्यार्थी एवं शिक्षक वहां पहुंचे तो छुट्टी होने के बावजूद प्रिंसीपल ने एक शिक्षक को वहां नियुक्त किया हुआ था जिन्होंने काफी जानकारी दी।

वापस आकर बच्चों को उनके भोजन के साथ मिठाई के रूप में केक वितरित किया गया। उस स्कूल के प्रिंसीपल साहब द्वारा बच्चों के लिए टॉफी के पैकेट्स दिए गए थे।

इस प्रकार के आयोजनों के उपरान्त अन्य धर्मों व सम्प्रदाओं के बारे में भी बच्चों से चर्चाएं की गई, विशेषकर इन धर्मों की शिक्षाओं के बारे में। यह बात भी निकलकर आई कि सभी धर्मों में सच बोलना, चोरी नहीं करना, दूसरो को नहीं सताना आदि पर बल है। फिर इन धर्म स्थलों पर स्वयं जाने, उन्हें देखने, समझने से समवाय पैदा हुआ।

हमें ऐसा अनुभव हुआ कि पुस्तकों में सिर्फ दूसरे धर्मों के बारे में पाठ पढ़ने की अपेक्षा बच्चे स्वयं जानकारी प्राप्त करें, कुछ आयोजन करें, धार्मिक स्थलों पर जाएं तो उनमें रुचि विकसित होगी। वे सभी धर्मों की शिक्षाओं, महापुरूषों, ग्रंथों, त्यौहारों आदि के बारे में जान सकेंगे। इस प्रकार सर्वधर्म समभाव की भावना विकसित होगी जो चरित्र निर्माण में सहायक होगी।

वि.वि. सिंह, पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन सोसायटी जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत

शिक्षा के कठिन दौर में एक सरल स्कूल

सुरेन्द्र बांसल

भूमंडलीकरण, निजीकरण के अजीब बाजारू लेकिन मानसिक तौर पर गरीब दौर में जहां शिक्षा को व्यापार के रैंप पर चढ़ाकर मुनाफे के गुल्लक भरे जा रहे हों, वहीं पंजाब में एक ऐसा शिक्षण संस्थान भी है, जहां सेवा, सुमिरन, सहयोग, सादगी, शुचिता, ईमानदारी, सच्ची किरत, सद्कर्म तथा परोपकार का व्यावहारिक पाठ पढ़ाया जाता है।

आज के कड़वे दौर में इस मीठे शिक्षण संस्थान का नाम है– बाबा आया सिंह रियाड़की कॉलेज तुगलवाला। इसकी स्थापना रियाड़की क्षेत्र में एक परोपकारी बाबा श्री आया सिंह ने 1923 में पुत्री पाठशाला के रूप में की थी। बाबा आयाजी 'गुरूमुख परोपकार उमाहा' यानी गुरू का सच्चा सेवक परोपकार, समाज सेवा भी बहुत चाव से करे जैसे महावाक्य का अनुसरण करते–करते अपने जीवन के अंतिम अध्याय तक इस पाठशाला से जुड़े रहे। यह शाला जिला गुरदासपुर के उत्तर–पूर्व, दरिया व्यास के साथ पग–पग बहती अपरवारी दोआब नदी के किनारे रियाड़की क्षेत्र में गांव तुगलवाला में है।

> 'अपने हाथ अपना काज स्वयं ही संवारने' की शिक्षा दी जाती है। कॉलेज की सभी लड़कियां पढ़ाई के साथ–साथ प्रोफेसर, प्रिंसीपल, क्लर्कों तक का सारा काम स्वयं ही संभालती हैं। इन सभी कामों के संचालन हेतु विद्यार्थियों की स्व–निर्मित कमेटी है जो सभी कार्यकर्ताओं को स्वयं सेवा, स्व–निर्भरता तथा सद्चित जैसे मूल्यों के प्रति सदैव सचेत करती रहती है।

पाठ्य पुस्तकों के साथ–साथ यहां जीवन से साक्षात्कार की व्यावहारिक शिक्षा जी जाती है। नकल तथा निठल्लेपन की इस शाला में कोई जगह नहीं। दिन के उजाले की सादगी की तरह इस शिक्षण संस्था की शुरूआत होती है। संस्थान के प्रांगण में प्राईमरी, हाई, सीनियर सैकेण्डरी के साथ एम.ए. तक की शिक्षा दी जाती है। लगभग पंद्रह एकड़ में फैले इस विशाल कॉलेज में दस एकड़ जमीन पर खेती–बाड़ी की जाती है, जिसमें सभी विद्यार्थियों का सहयोग रहता है। पांच एकड़ में लड़कियों का हॉस्टल स्थापित है, जहां लगभग 2400 लड़कियां रहती हैं। संस्थान वर्ष भर की पढ़ाई का प्रति लड़की 800 रुपया लेता है। निर्धन विद्यार्थियों से रत्तिभर भी फीस नहीं ली जाती।

कॉलेज के खुशनुमा पहलुओं में से एक पहलू यह है कि सभी कक्षाओं के सीनियर विद्यार्थियों ही जूनियर कक्षाओं को पढ़ाते हैं। यह सिलसिला एम.ए. से लेकर नर्सरी तक चलता है। 4,000 विद्यार्थियों की संख्या वाले इस संस्थान में मात्र पांच ही शिक्षक हैं। शिक्षण प्रक्रिया के पहले चरण में एक विद्यार्थी सौ विद्यार्थियों को एक समूह में पढ़ाता है, फिर 10–10 के अन्य समूहों को पढ़ाया जाता है। पढ़ाई में किसी कारण से थोड़ा पिछड़ रहे या कमजोर छात्र को मूर्ख नहीं माना जाता। उस पर तब विशेष ध्यान दिया जाने लगता है। ऐसे छात्रों में से एक–एक छात्र को एक–एक शिक्षक मेहनत कर पढ़ाते हैं।

पूरे शिक्षण संस्थान में 'अपने हाथ अपना काज स्वयं ही संवारने' की शिक्षा दी जाती है। कॉलेज की सभी लड़कियां पढ़ाई के साथ–साथ प्रोफेसर, प्रिंसीपल, क्लर्कों तक का सारा काम स्वयं ही संभालती हैं। इन सभी कामों के संचालन हेतु विद्यार्थियों की स्व–निर्मित कमेटी है जो सभी कार्यकर्ताओं को स्वयं सेवा, स्व–निर्भरता तथा सद्‌चित जैसे मूल्यों के प्रति सदैव सचेत करती रहती है। खुद पर भरोसे से निर्णय लेना, आत्मनिर्भरता के लिए डेयरी, बागवानी, रसोई तथा खेती का सारा काम, हॉस्टल में उपयोग होने वाला अनाज तथा सब्जियां लड़कियां स्वयं ही उगाती हैं। संस्थान में बचत के उपाय भी निरन्तर खोजे जाते रहते हैं। इसमें संस्थान की अपनी आटा चक्की, धान छानने की मशीन, गन्ने के रस की मशीन, सौर ऊर्जा वाला पंप तथा बिजली प्रबंधन स्कूल का अपना है। बचत के साथ–साथ ये बातें स्वावलंबन भी सिखाती हैं।

शिक्षा संस्थान की दिनचर्या सुचारू ढंग से चले इसलिए उसे छह भागों में बांटा गया है। दिन की शुरूआत गुरूवाणी के पाठ, कीर्तन तथा अरदास से होती है। दिन भर की साफ–सफाई, पढ़ाई तथा खाना बनाने की जिम्मेदारी भी स्वयं विद्यार्थियों की ही होती है। दोपहर का भोजन एक सादे हॉल में पंगत में बैठकर खिलाया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी अपने बर्तन स्वयं साफ करता है। संस्थान में कोई राजपत्रित अवकाश नहीं होता। यहां छुट्‌टी के बदले सभी धर्मों के गुरूओं, अवतारों के जन्म तथा शहीदी दिवस पूरे उत्साह से मनाए जाते हैं।

आज पाठ्‌यपुस्तकों का विकल्प बन चुकीं गाइडों तथा नकल का यहां नामोनिशान तक नहीं। परीक्षा सत्र में गुरूनानक देव विश्वविद्यालय से किसी उड़नदस्ते की बजाय सरकारी प्रक्रिया पूरी करने के लिए मात्र एक ही व्यक्ति आता है। इस अधिकारी का काम केवल इतना होता है कि वह सील बंद लिफाफों को खोल सके। शेष सभी काम कॉलेज प्रबंध या विद्यार्थी करते है। इस प्रकार के सरल तथा रचनात्मक निर्णयों के कारण पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड ने इस संस्थान को 35000 रुपए का पुरस्कार दिया है।

संस्थान की सभी परीक्षाओं यानी एम.ए. से नर्सरी तक का परिणाम शत्–प्रतिशत रहता है। यहां प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी प्रथम स्थान पाते हैं, मैरिट में भी रहते हैं। प्रति वर्ष गुरूद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा गुरूवाणी संबंधी प्रतियोगिता में 400 से ज्यादा विद्यार्थी बैठते हैं।

संस्थान के आस–पास के गांवों में यहां की छात्राएं सेहत, सामाजिक चेतना के लिए नशामुक्ति, अश्लीलता, एड्‌स जैसी बुराइयों के प्रति चेतना यात्राएं निकालती हैं।

कॉलेज के प्रिंसीपल श्री स्वर्ण सिंह यहां चौबीस घंटे कॉलेज के किसी भी काम के लिए उपलबध रहते हैं। कॉलेज का स्वभाव ज्यादा से ज्यादा कैसे स्वदेशी हो पाए, उनका पूरा परिवार इसी धुन में जागता और सोता है। कॉलेज का आर्थिक पक्ष कैसे मजबूत हो सके, इसके लिए उन्होंने कॉलेज परिसर में 12 गोबर गैस प्लांट बनवाए हैं ताकि विशाल हॉस्टल में रहने वाले बच्चों के लिए भोजन बिना बाहरी लकड़ी अथवा गैस के पकाया जा सके। कॉलेज परिसर के आस–पास पांच किलोमीटर में शहतूत अथवा दूसरे फलों के पेड़ लगाए गए हैं। इनसे संस्थान का आर्थिक पक्ष मजबूत होता है। इस संकल्पवान संस्थान ने कभी सरकारी अथवा गैर–सरकारी अनुदान की मांग नहीं की है।

देश भर की शिक्षा नीतियों के या कहें अनीतियों के उल्का पिंड गिराने वाले सरकारी लोगों को ऐसे स्कूलों की यात्राएं अवश्य करनी चाहिए।

गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित पत्रिका, **गांधी मार्ग** के जुलाई–अगस्त 2007 अंक से साभार।

शिक्षा का मूल मकसद सामाजिक सरोकार पैदा करना होना चाहिए

डी. एस. पालीवाल

राजस्थान में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के परिणामों में आधे से अधिक बच्चों को फैल घोषित किया गया। इसी प्रकार उच्चतर माध्यमिक कक्षा के परिणाम भी लगभग उतने ही रहते है। पांचवी तक आते–आते अब भी आधे बच्चे विद्यालय छोड़ चुके होते है। यह मान लेते है कि विद्यालय प्रवेशोत्सव, सरकारी डंडे तथा कागजी खानापूर्ति के चलते कहा जाता हैं कि शत प्रतिशत बच्चे भर्ती हो जाते है।

आंकड़ों को उल्टी तरफ से देखते है। कुल एनरोल होने वाले बच्चे 100, पांचवी पास करने वाले बच्चे 50, दसवीं पास करने वाले बच्चे 25 तथा बारहवीं तक जाते–जाते दो–तीन ही रह जाते है। यह बात सत्य ही मामूल पड़ती है कि स्नातक होने वाले बालकों का प्रतिशत तीन से पांच रहता है। इन आंकड़ों को सिर्फ आदिवासी क्षेत्रों, सिर्फ महिलाओं एवं दलितों के अर्थ में देखे जाएंगे तो निसंदेह कम होंगे। सवाल उठता है ऐसा क्यों? इसके लिए स्वाभाविक रूप से बालक, अध्यापक एवं अभिभावक का त्रिकोण ही जिम्मेदार है। यहां पुनः सवाल उठता है कि कौन ज्यादा जिम्मेदार है? इस बात पर बहस जारी है।

आज स्कूलों की संख्या, उनके भवन, उसमें मिलने वाली सुविधाओं में बढ़ोतरी तो हुई है मगर इस प्रक्रिया में हुए भ्रष्टाचार को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। अध्यापकों की संख्या तथा विद्यालयों में सामग्री की उपलब्धता भी पिछले दशकों से बेहतर है। अभिभावकों द्वारा भी बच्चों की शिक्षा पर कमोबेश ध्यान दिया ही जाता है फिर इतने अधिक बच्चों के फेल होने या शिक्षा जगत से दूर हो जाने के क्या कारण है?

रही बात उनकी जो स्नातक तक पढ़ाई कर लेते हैं, उनकी योग्यता की क्या स्थिति है इसका अंदाज पिछले वर्षों आर.पी.एस.सी. की परिक्षाओं में परिक्षार्थियों द्वारा अर्जित अंकों से लगाया जा सकता है। कुछ बुजुर्गों तथा विभिन्न संस्थाओं के मुखियाओं की इस उक्ति में भी देखा जा सकता है कि 'इन्हें तो अभी प्रार्थना पत्र भी लिखना नहीं आता'। तो फिर सवाल इस बात का है कि आखिर आता क्या है? इस स्थिति से उभरने के लिये क्या करें? हालांकि कुछ विद्यार्थी अपनी विशेष परिस्थितियों के कारण सामान्य से कुछ फर्क होते हैं इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता पर वैसी परिस्थितियां कैसे पैदा करें?

हमारे कुछ साथियों की राय है कि प्राथमिक शिक्षा इतनी आनंददायक होनी चाहिए कि बच्चा स्कूल की तरफ आकर्षित हो। उसको पढ़ाने की ऐसी पद्धतियां हो जिसमें वह करके सीखे तथा बालक में तर्क शक्ति विकसित हो ताकि वह वैज्ञानिक ढंग से विवेचन कर सके। गणित जैसे अमूर्त विषय पर विशेष ध्यान देकर वस्तुगत उदाहरणों व प्रयोगों द्वारा समझाया जाएं। शिक्षकों के प्रशिक्षण हो और वे समर्पित होकर बच्चों को पढ़ाएं, विकसित करे। सरकार भी यह मानने लगी है तथा उनके शिक्षा अभियानों में प्रशिक्षण,

आवासीय प्रशिक्षण आदि अनिवार्य कर दिए हैं। सारी खामियों के बावजूद अब तक अनेक शिक्षकों ने प्रशिक्षित 'मास्टर ट्रेनर्स' द्वारा अलग–अलग स्तर के प्रशिक्षण प्राप्त किए हैं। इन प्रशिक्षणार्थियों में से अनेक इन पद्धतियों पर गम्भीर विमर्श कर सकते हैं, यहां तक कि अन्य अध्यापक समूहों को प्रशिक्षित भी कर सकते हैं। लेकिन परिणाम आज भी वही ढाक के तीन पात रहते हैं।

शिक्षकों की सारी कठिनाइयों के बावजूद यह स्पष्ट है कि अध्यापक की जानकारी (समझ) तथा वास्तविक व्यवहार के बीच गहरी खाई है। अपने विषय की उपलब्ध जानकारी अथवा पाठ्यक्रम के अनुसार वह बालकों तक संप्रेषित नहीं कर पाता है अथवा वह ऐसा करना नहीं चाहता है?

विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न स्तर के विद्यालयों के विद्यार्थियों व अध्यापकों से मिलने के पश्चात मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अधिकांश शिक्षक न तो अपने ज्ञान को अपडेट करते हैं न ही वे उसे पाठ्यक्रमानुसार विद्यार्थियों को संप्रेषित करना चाहते हैं, बल्कि पढ़ाने में घास काटते हैं तथा हर मसले में खानापूर्ति वाला रवैया रखते हैं। कुल मिलाकर स्कूल आना उनकी मजबूरी होती है जहां वे 'टाईमपास' करते हैं। परिणामतः बच्चों की शुरू से ही न केवल नींव कमजोर होती है बल्कि उनके नैसर्गिक विकास को कुंद कर दिया जाता है। यहां अभिभावक तो इससे खुश होते हैं कि उनकी संतान स्कूल जाती है। वे बाल मन के साथ किए जा रहे षड़यंत्रों को नहीं समझ सकते। अतः अभिभावकों पर इसकी मुख्य जिम्मेदारी नहीं डाली जा सकती।

यहां अनेक अच्छे व समर्पित शिक्षकों को उक्त श्रेणी में नहीं डाला जा सकता। ऐसे समर्पित शिक्षक संख्या में नगण्य हैं पर उन्हें प्रणाम करने को जी चाहता हैं। उनके समर्पण के कारणों की पड़ताल करने पर अधिकाशतः यह देखने में आया कि वे सामाजिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहते हैं तथा उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता व सरोकार सिर्फ शिक्षा के लिए नहीं होकर किसी न किसी रूप में सम्पूर्ण समाज के सुधार अथवा परिवर्तन से जुड़े हुए हैं। इसीलिए वे बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए भी समर्पित हैं।

अन्त में इस प्रश्न का कि शिक्षा कैसी हो? इसका एक ही जवाब दिया जा सकता है कि वह ऐसी हो जो शिक्षा के साथ ही साथ सजगता पैदा करें, वैज्ञानिक पद्धति विकसित करें, वह सही व गलत की पहचान करने की क्षमता विकसित करें, सीखने की लालसा बढ़ाएं तथा समाज के प्रति संवेदनशीलता व सरोकार पैदा करें। ऐसा करने के लिए संवेदनशील व्यक्ति, संस्था व अध्यापक स्वयं को उदाहरण बनना पड़ेगा और सीखते हुए अनेक कठिन नित नए प्रयोगों से गुजरना होगा। अब भी बहुत देर नहीं हुई है।

डी.एस. पालीवाल, आदिवासी युवाओं को जोड़कर सामाजिक मसलों पर काम करते हैं। उदयपुर में रहते हैं।

सेमीनार से

शिक्षा में खुलापन का मुद्दा

गोविन्द भाई रावल

शायद सन् 1941 की बात है। राजेन्द्र प्रसाद ने पूना में कहा। पूना में जब कहा तो उन्होंने कह दिया ''करो और सीखो'' और हो गया। लेकिन गांधी जी ने बहुत सी बातों में चुप्पी साधी थी। जब हम कह देते है कि शान्ति और अहिंसा का, अहिंसा और सत्य का रास्ता है तो उन्होंने थोड़ा सा कुछ क्रिटिक कमेन्ट्स कर दिए हैं। पर उसके बाद उसको बहुत विस्तारित नहीं किया है। केवल यह कहकर कि आत्मनिर्भर है इसलिए यह अहिंसा है क्योंकि हम शोषण नहीं करते, पर उसके बाद उन्होंने इसे छोड़ दिया। मैं कहने की कोशिश यह कर रहा हूं कि बुनियादी शिक्षा के बुनियादी सिद्धान्त क्या हैं इस बारे में अलग–अलग व्याख्याकारों ने अलग–अलग व्याख्या की है। जैसे मोहम्मद ने क्या कहा, ईसा ने क्या कहा, या गीता में क्या लिखा है। सब टीकाकार और व्याख्याकार अपने–अपने ढंग से व्याख्या कर देते हैं।

मैंने बहुत सी किताब पढ़ने की कोशिश की है कि कैसे हर व्यक्ति ने उसकी थोड़ी अलग व्याख्या कर दी है। अब मैं साहित्य पर आना चाहता हूं। यह मानकर चल रहा हूं कि सात साल बाद ''उत्तर बुनियादी शिक्षा'' नाम से भी काफी काम हुआ। ये जो बहुत सारे सवाल उठा रहे हैं, शायद ज्ञान के उस क्षेत्र से पहुंचते हैं जहां वे समझ रहे हैं कि केवल श्रम या केवल काम से पहुंचा नहीं जा सकता। उन अवधारणाओं पर, उन विचारों पर, उसके लिए शायद उत्तर साक्षरता पर जो काम हुआ था, बुनियादी शिक्षा पर जो काम हुआ था, और उसके प्रशिक्षण के लिए, बहुत सामग्री विकसित की गई थी, उस सामग्री में जाने की जरूरत है। मैं यह जवाब नहीं दे रहा हूं कि उसमें उत्तर है। पर यह भी नहीं कह रहा हूं कि नहीं है। यह मानकर चलना ठीक नहीं है कि उसमें नहीं हैं क्योंकि उस जमाने के विद्वानों ने बैठ कर बहुत मेहनत की और कोशिशें की थी। मैं इनको फिर से याद दिलाना चाहूंगा। मैं उस सामग्री को अपर्याप्त मानने को तैयार नहीं हूं। मैं तो बल्कि परेशान हूं कि इतनी मेहनत कैसे की थी उस जमाने में लोगों ने साहित्य का सृजन करने के लिए। विभिन्न अवधारणाओं के साथ, विभिन्न विषय के साथ समन्वय करने और उसको बनाने में बहुत सारा परिश्रम किया गया। बहुत सारी सामग्री है। यह मान सकता हूं कि वह सामग्री आज के हर करीकुलम के हर विचार को नहीं छूती हो पर वह पर्याप्त गाईड लाईन है। जो नए विचार थे, जिन बातों को उसमें नहीं जोड़ा गया, उनको आज हम लोग बैठकर अपनी सृजनशीलता से, चाहे समन्वय के लिए या कहिए अनुबंध के लिए हम कैसे कर सकते हैं। यह हमारी सृजनशीलता की बात है। यह कहना ठीक नहीं हैं कि यह करना संभव नहीं है। इस पर कोशिश करने की जरूरत है। बिना प्रयोग किए मैं यह भी नहीं कहता कि नहीं हो सकता है, पर मुझे लगता है कि संभावनाएं हैं।

सारे विश्व के सभी शिक्षाविदों का एक ही मत है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए। एक ही प्रदेश में ऐसे अलग–अलग सेक्शन होते हैं जैसे मेवाड़ी, मेवाती, मारवाड़ी। हमारे गुजरात में भी ऐसे होते हैं, मेवाड़ी। वैसे तो यह सोचने की बात है कि

प्रारंभिक तौर पर जब शिक्षा शुरू करते हैं उसी समय बच्चे को पर्यावरण में जब लाना है तो उसको अनजान न लगे इसलिए शुरू की बातचीत, शुरू का काम–काज उसको उसकी अपनी लोक बोली में आप बता सकते हैं। लेकिन आखिरी तौर पर तो जब आगे जाना होगा तो कम से कम उस प्रान्त की जो भाषा होगी, उस भाषा में उसकी शिक्षा–दीक्षा आगे चलनी चाहिए। पूरा का पूरा सिलेबस, पहली कक्षा से लेकर के बारहवीं कक्षा तक, यूनिवर्सिटी तक, आप नहीं बना पाते, यह व्यावहारिक भी नहीं है। जो हमारे आदिवासी लोग हैं, हम चाहते हैं कि उनकी संस्कृति, उनका जो स्वरूप है, वह सब बना रहे। किन्तु आज के युग में यह नहीं हो पाता। बदलाव वह भी चाहते हैं। उनका जो रहन–सहन था, खान–पान था, पोशाक थी, उसमें बहुत कुछ बदलाव आ गया है। वह हमारी मझधार में आना चाहते हैं। हमारे जैसा खाना–पीना, हमारे जैसे कपड़े पहनना, हमारे जैसे बातचीत करना, ऐसा वे चाहते हैं। मझधार में यदि आना चाहते हैं तो आप उनको रोक नहीं पाएंगे। आज के युग के माहौल में ऐसी बातें नहीं चलेगी। इसका एक व्यावहारिक स्वरूप है। हमारा डांग प्रदेश है गुजरात का, तो उसकी एक डांगी बोली होती है। हमने इन बच्चों को लिए एक डांगी बोली बनाई है जो पहली कक्षा में ही उपयोग की जाती है। उसके साथ–साथ वहां की जो प्रादेशिक भाषा है, उनके भी संस्कार उसको दिए जाते हैं। इस प्रकार वे चौथी कक्षा तक इस भाषा के साथ आगे बढ़ते हैं। ऐसा ही लकीर का फ़कीर बन जाना कि मातृभाषा माने मां जो घर में भाषा बोलती है उसी बोली में पूरी शिक्षा दी जाएगी तो मैं समझता हूं कि यह ठीक बात नहीं हैं। इसके बारे में यहां इतनी सफाई देना ही पर्याप्त होगा।

आज के माहौल में मातृभाषा शिक्षा माध्यम के रूप में चले यह ठीक है लेकिन अंग्रेजी के बारे में हम गुजरात के लोगों ने जो गलती की है ऐसी गलती नहीं करनी चाहिए। हमने एक सिद्धान्त बना दिया कि हम गुजरात में अंग्रेजी आठवीं कक्षा से सीखेंगे, पांचवीं से नहीं सीखेंगे। मैं समझता हूं आज के युग में भाषा के निष्णात लोग ऐसा कहते हैं कि छोटे बच्चे ज्यादा भाषाएं अपने आप सीख सकते हैं। हमारे शहर में कॉस्मोपोलिटन समाज में लोग रहते हैं। इसलिए बच्चे दो–तीन भाषाएं आपस में बहुत अच्छी तरह से बोलते हैं, सीख लेते हैं। अतः मैं कहता हूं कि बच्चा पहले से अपनी भाषा में सीख लें। पानी शब्द है अब इसके साथ उसके लिए विकल्प में जल शब्द है, वाटर शब्द है वह एक प्ले मेथड से सीख लें तो इसमें क्या आपत्ति है? इससे उसका शब्दकोश बढ़ता है। हम शास्त्रीय लोग जब बैठते हैं तो लकीर के फ़कीर हो जाते हैं। सिद्धांत हमारे दिमाग को पकड़े रहते हैं। जमाना तो बदलता रहेगा, परिवर्तन आते रहेंगे। आपको यह सब स्वीकार करना होगा, उसके साथ कैसे मेल बैठाना, सिद्धान्तों का मेल भी कैसे बैठाना, यह भी आपको देखना होगा। तो भाषा के प्रश्न में भी यह बातें सोचने जैसी हैं। समय की जो मांग है, उसको साथ में लेकर चलना चाहिए।

कभी–कभी ऐसा हो जाता है कि जिसका नाम ज्यादा लिया जाता हैं उससे एक एलर्जी सी हो जाती हैं। आज गांधी, बुनियादी शिक्षा यह सबके लिए एलर्जी सी बन गई है। विनोबा जी ने बहुत अच्छा बताया, एक अच्छी शिक्षा हमें चाहिए, ''आनो भद्र कृतवो यन्तु विश्वतः'' यह हमारा आदर्श है, हमारी संस्कृति का। तो जहां से जो अच्छी चीज मिलती हैं हमें लेनी हैं। गांधी जी के पास से कुछ अच्छी चीज मिल गई तो हम ले लेंगे। टैगोर के पास से मिली तो हमने ले ली। रूसो से मिल गई। पिस्टोलॉजी से मिल गई। किसी अन्य शिक्षाशास्त्री या मोन्टेसरी से मिल गई, तो जिसके पास से जो चीज अच्छी मिली, हमने ले ली। वैसे तो मैं खादी पहनता हूं, गुजरात में हमारी नई तालीम का अगुवा हूं, सर्वोदय का अगुवा हूं तो

लोग मुझे मानते हैं कि मैं एक गांधीवादी हूं, मैं एक शिक्षक हूं। पर मैं गांधीवादी नहीं हूं। मैंने गांधी की कंठी नहीं बांधी है। मैं मानता हूं खुलापन शिक्षक में होनी चाहिए। उसे किसी की कंठी नहीं बांधनी चाहिए। हम सब ज्योति भाई नहीं बन पाएंगे। ऐसा मिजाज़, ऐसी क्रांतिकारिता हम नहीं बना सकते हैं। इससे क्या हम बुनियादी शिक्षा का काम छोड़ देंगे? ऐसे कई तत्व सामान्य शिक्षा में हैं जो निहायत आवश्यक हैं। हमें उनको भी लेना हैं बुनियादी शिक्षा के तत्वों में। इसी रूप में उसका एक माहौल बनाना होगा। इसका एक प्रारूप बनाना होगा। जहां से जो कुछ अच्छा मिला वह ले लिया इस तरह एक अच्छी शिक्षा हमें इस देश में बनानी है। उसमें काम को भी एज्यूकेशन में दाखिल करने की जरूरत है, सामुदायिक जीवन की भी जरूरत है और उसमें सोश्यल सर्विस की भी जरूरत है। मैं तो कहता हूं कि सोश्यल सर्विस की नहीं, सोश्यल चेंज की जरूरत है। यह समाज सेवा किसलिए है, समाज परिवर्तन के लिए। मूल्य बदलने के लिए है। किसी भी शिक्षा में मूल्य परिवर्तन ही शिक्षा होती है। तो हम मुल्य परिवर्तन चाहते हैं।

आज हमारे समाज में जो मूल्य बन गए हैं और यहां हम बात करते हैं ठीक है, एक टोटल चेंज की बात चल रही है। पूरा–पूरा चेंज, सम्पूर्ण क्रांति, जे.पी. की भाषा में बोलें तो एक सम्पूर्ण क्रांति। यह सिर्फ शिक्षा की क्रांति से नहीं चलेगा, लेकिन कहीं से तो इसका आरंभ करना होगा। तो हम लोग कहां से करेंगे। हम शिक्षक हैं तो यह जिम्मेदारी हमें लेनी होगी। हम लोग शिक्षा के क्षेत्र में हैं तो इस चेंज का आरंभ हम शिक्षा के जरिए करेंगे। दूसरे लोग सोचेंगे उनके जो प्रोग्राम हैं उसके जरिए चेंज लाने का। लेकिन एक पूरा चेंज हमें लाना है। यह कहकर हम जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकते कि राजनीति में जो लोग हैं वे नहीं करते हैं। और वे नहीं करते हैं तो हम क्या करें। नहीं, हम अपनी पूरी ताकत से, चाहे हम एक छोटी मोमबत्ती क्यों न हों, हमारी जो शक्ति हैं उसका उपयोग करेंगे। बात इतनी है कि नैतिक मूल्यों पर ही समाज आगे बढ़ सकता है, ऐसा हमारा पूरा विश्वास है। यह विश्वास शिक्षा के जरिए ही पूरा होगा। शिक्षा किसी के द्वारा नहीं दी जाती। श्री अरविन्द भी कहते थे कि कोई किसी को पढ़ा नहीं सकता, हर एक को स्वयं पढ़ना होता है। कैसे पढ़ता है बच्चा, वह तो शिक्षक के जीवन से पढ़ता है। जैसा हमारा जीवन होगा, बच्चा हमें देखेगा, वही मूल्य वह ग्रहण करेगा। सत्य बोलो, ऐसा कहने से सत्य नहीं बोला जाता। यदि शिक्षक ही सत्य नहीं बोलेगा तो बच्चा कैसे सत्य बोलेगा। अहिंसा का पाठ पढ़ाते समय यदि शिक्षक बच्चे को मारेगा तो अहिंसा का पाठ कैसे दिया जाएगा? मूल्य की शिक्षा जो जीवन से ही दी जा सकती है। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा जीवन की शिक्षा है। इसका मतलब है यह जीवन के जरिए ही दी जा सकती है। हम शिक्षकों को इसके लिए तैयार होना होगा। एक बड़ा काम टीचर्स ट्रैंनिग का है। अभी मैंने कृष्णमूर्ति का लेख पढ़ा तो उसमे भी यही बताया है। उन्होंने कहा है कि प्रगति के केन्द्र में शिक्षक और बालक है। यह तो हम जानते हैं कि जहां तक शिक्षक तैयार नहीं होगा, उसकी ट्रेनिंग, उसके दिमाग का बदलाव नहीं होगा, तब तक परिवर्तन नहीं आएगा। इसलिए आज जो कार्यक्रम हम सोचते हैं उसमें टीचर्स ट्रेनिंग पर ज्यादा जोर देना चाहिए।

विद्या भवन सोसायटी, द्वारा 10–11 मार्च 2005 को आयोजित किए बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता से संपादित अंश।
गोविन्द भाई रावल, विश्व मंगलम अनेगरा, नई तालीम को वर्तमान संदर्भ में स्थापित करने के लिए प्रयासरत।

सेमीनार से

ज़रूरत है बुनियादी शिक्षा को पुनर्भाषित करने की

शरद चन्द्र बेहार

बुनियादी शिक्षा के बुनियादी तत्व क्या मानें? गांधी जी ने प्रस्ताव के रूप में जो रखा था वह सब या दो दिन की कान्फ्रेन्स के बाद जो प्रस्ताव पास किए गए वे प्रस्ताव डॉ. जाकिर हुसैन के द्वारा जो बताया गया और उसके बाद डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं जे.पी. कृपलानी ने जो कहा। इन सबको मैंने पढ़ने की कोशिश की है। उन्होंने अपने अपने ढंग से पेश किया। इन सब में से किसको मान लूं, समझ में नहीं आता। सबसे पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं कि बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य मैं क्या समझता हूं। मेरी राय में पुनर्भाषित करने की जो बात है वह इसी आधार पर होगी कि असली बात क्या है। उसकी रस्मों को, बाहरी आवरण को याद रखने की जरूरत नहीं है। बुनियादी शिक्षा के बुनियाद में क्या है? या उसका उद्देश्य क्या था? उन उद्दश्यों की प्राप्ति के लिए आज हम क्या कर सकते हैं? आप सब लोग जानते हैं मुझे कहने की जरूरत नहीं है। गांधी जी बार–बार कहते थे कि ''मैं तो लगातार कुछ न कुछ लिखता

रहता हूं, कहता रहता हूं। आपको अलग–अलग समय, मेरी अलग–अलग बातें भी मिल जाएगी। लेकिन ऐसी हालत में मैंने बाद में जो कहा है उसे ही ठीक मानिए।'' मैं ऐसे कहता हूं कि यदि वे 2006 में होते तो क्या कहते? ये मेरे प्रोजेक्शन की बात है। इसके आधार पर ही निर्णय करना ज्यादा बेहतर होगा। लेकिन फिर मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं क्या समझा हूं। उन्होंने बुनियादी शिक्षा के बारे में क्या करने की कोशिश की थी? 11 चुनौतियां बताई बुनियादी शिक्षा के समक्ष। मैंने उन 11 चुनौतियों को देखने और समझने की कोशिश की। उन 11 चुनौतियों मे से 6 तो सीधे शिक्षा से जुड़ी हुई है और शेष पांच शिक्षा के बाहर की है। वह बाहर समाज को चुनौती देने की कोशिश है। मैं बता दूं कि शिक्षा के 6 कौन–कौन से मुद्दे हैं। नम्बर एक, नेशनल एज्यूकेशन से संबंधित–ब्रिटिश एज्यूकेशन सिस्टम के बदले एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति, आप सब लोग जानते हैं इसलिए इतिहास बताने की जरूरत नहीं है।

1920–21 में जब से सत्याग्रह होने लगा था लोग स्कूल, कॉलेज छोड़ने लगे थे, उन लोगों को अलग प्रकार की शिक्षा, अलग प्रकार की संस्थाओं की जरूरत थी। कुछ संस्थाएं 1921, 1922 व 1923 में शुरू भी हुई थी। लेकिन कुल मिलाकर सब अपने–अपने ढंग से चल रहा था। तो वह एक तरह से एक अलग कोशिश थी, एक अलग प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था देने की। नम्बर दो, ये बहुत दिलचस्प है, बहुत सरल है, मैकाले की शिक्षा को चुनौती देना। मैं जानबूझकर मैकाले शब्द का इस्तेमाल कर रहा हूं। सब लोग जानते हैं, फिर भी दोहराना चाहूंगा ताकि भूलें नहीं कि मैकाले की शिक्षा क्या थी। यह थी ''ए क्लास ऑफ पर्सन्स, इण्डियन इन ब्लड एण्ड कलर बट इंग्लिश इन टेस्ट इन ऑपिनियन, इन मॉरल्स एण्ड इन इन्टलेक्ट''। ये बनाने की उनकी इच्छा थी और इसको चुनौती बनाने की बात थी। तीसरी दिलचस्प बात है, विभाजित शिक्षा जिसे विषयों में बांट दिया जाता है, उस शिक्षा को चुनौती दी है। आज भी मुझे समझ में नहीं आता है। हम सब लोग कहते हैं कि व्यक्तित्व का समग्र विकास करना शिक्षा का उद्देश्य है। उसके बाद अचानक आ जाता है, इतिहास पढ़ाना, गणित पढ़ाना, हिन्दी पढ़ाना। ये व्यक्तित्व का विकास हो रहा है कि विषयों का ज्ञान दे रहे हैं? कहीं न कहीं लॉजिकली गैप है। जब व्यक्तित्व के विकास की बात कर रहे हैं, तो व्यक्तित्व की बात करें, उसको कैसे विकसित करेंगे, मुझे बताइए। बजाय उसके आप करना क्या शुरू करते हैं विषयों को पढ़ाना। ये समझ में नहीं आता है। गांधी जी ने इसको चैंलेज किया और इसलिए आप समवाय कहते हैं, इन्टीग्रेटेड स्टडी की बात कही। पिछले 25–30 सालों में मैंने और बहुत सारे लोगों ने कोशिश की होगी कि अलग–अलग विषय न पढ़ाया जाए, कम से कम सोशल सायन्स को एक बना दो, सायन्स को एक बना दो, लेकिन फिर भी फिजिक्स अलग पढायी जाती है, केमेस्ट्री अलग पढ़ायी जाती है। एक तो उन्होंने इसको चुनौती दी थी, फिर उन्होंने चुनौती दी थी किताब आधारित शिक्षा या मैं कहूं परीक्षा आधारित एक खास प्रकार की शिक्षा को। समग्र विकास उनका आग्रह रहा तो समग्र विकास का एक मॉडल देने की कोशिश की गई।

कार्य और श्रम की बात जो हम कर रहे हैं, मुद्दा वह नहीं है। सवाल ये है कि कार्य की मदद से कैसे आप नैतिकता का विकास कर रहे हैं? कैसे सामाजिक गुणों का विकास कर रहे हैं? कैसे आप व्यक्तित्व का विकास कर रहे हैं? कैसे आत्मविश्वास दे रहे हैं? फिर उन्होंने चुनौती दी थी शिक्षा को, प्राथमिक स्कूल को। हम लोग फिर फंस गए। बुनियादी शिक्षा उसके बाद उत्तर बुनियादी हो गई। उन्होंने इसका भी एक

तरह से विरोध किया था। जो एजेंडा शुरू में गांधी जी ने बनाकर दिया था उसमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि विश्वविद्यालय को राज्य की शिक्षा का पूरा काम एक साथ देखना होगा। फिर उन्होंने जिन्दगी और सीखने के बीच की जो खाई है, स्कूल में जो आप सीखेंगे, और जिन्दगी अलग रहेगी, इस खाई को उन्होंने चुनौती दी थी। उन्होंने कहा था कि ये अलग चीज नहीं है, एक ही है। जिन्दगी और पढ़ना दोनों साथ–साथ है। यह एक अगली चुनौती थी जो शैक्षिक चुनौती थी। फिर एक चुनौती दी थी उन्होंने, जो मुझे बहुत दिलचस्प लगती है, जिसकी हम सब लोग बात कर रहे हैं। पर मुझे नहीं लग रहा है कि वह विचार उस ढंग से अभी तक पेश हो पाया है। पता नहीं उन्होंने पेडॉगोजी को इतना महत्वपूर्ण क्यों माना? आप काम के जरिए किस ढंग से पढ़ाना पसंद करेंगे? तो बुनियाद रूप से कहता हूं कि शिक्षा शास्त्र को, शिक्षा में बदलाव के लिए और पूरे समाज के बदलाव के लिए। ये एक बहुत दिलचस्प सा सवाल है। मैंने छः चुनौतियां जो शिक्षा से संबंधित है आपको बता दी। इसके अलावा पांच चुनौतियां हैं जो शिक्षा के बाहर की है। अनिल सद्गोपाल ने कहा था ब्राह्मनीकल ऑर्डर को चुनौती देना। मैं स्वीकार करता हूं लेकिन थोड़ा सा उनसे मतभेद करना चाहता हूं। यह कहना सही नहीं है कि ब्राह्मनीकल ऑर्डर को चुनौती दें। मैं कह रहा हूं कि सारी दुनिया में बुद्धि को शारीरिक श्रम से ऊंचा माना जाता है। ये केवल ब्राह्मनीकल ऑर्डर का हिस्सा नहीं है। प्लेटो ने भी जब बात की थी तो उन्होंने अपनी बुद्धि, भुजाओं और पेट की बात को हिस्सों में बांटा था। उसी तरह की वर्ण व्यवस्था, खास तरह की तथाकथित रेशनालिटी का जमाना जब यूरोप में शुरू हुआ, उसके बाद भी बुद्धि को ऊंचा स्थान दिया जाता रहा। बुद्धि को जो ऊंचा स्थान दिया जाता है, उसको चुनौती देने की बात कही थी। मैं यह कहना चाहता हूं कि शारीरिक श्रम और बुद्धि के बीच, बुद्धि का ऊंचा स्थान है। फिर भी समाज को बदलने की कोशिश, मूक सामाजिक बदलाव बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है। बाद में विनोबा ने भी उसकी व्याख्या की है। ज़ाकिर हुसेन और बाकी लोगों ने भी बहुत तरह से बताया कि कैसे उसको मुक सामाजिक बदलाव मानते थे। लेकिन जो बहुत महत्वपूर्ण बात है और यहां मैं एक प्रकार से अपना विचार पेश कर रहा हूं कि क्या गांधी जी इतने मासूम थे कि वे मानते थे कि स्कूल में आपने श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित कर दी तो समाज बदल जाएगा। समाज में शारीरिक श्रम व बुद्धि का स्थान केवल इस आधार पर नहीं होता कि आप क्या सोचते हैं। यह इस पर आधारित होता है कि समाज किस तरह का मूल्य देता है शारीरिक श्रम को। क्या अन्य कहीं और कोई ऐसी बातें हुई है, जिससे यह माना जाए कि बौद्धिक काम की कीमत उतनी होनी चाहिए जितनी शारीरिक श्रम की। मैं पांच घंटे मिट्टी खोदूंगा, आप पांच घंटे पढ़ाएंगे। दोनों को बराबर मजदूरी मिलना चाहिए। जब तक समाज में समान मजदूरी की बात नहीं आ जाएगी, तब तक केवल इससे काम नहीं चलेगा। हम सब यहां जितने लोग बैठे हैं, सब मानते होंगे कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है और एक तरीका है जिस तरीके से हम कुछ कर सकते हैं।

मेरी समझ में शाला में वे उस आदर्श समाज का प्रतिबिम्ब, प्रतिरूप बनाने की कोशिश कर रहे थे, जिस ग्रामीण समाज की वे स्थापना करना चाहते थे। वे ऐसे समाज की बात करते थे, जिस समाज में भेदभाव नहीं हो और चाहते थे कि स्कूल उसका एक स्वरूप बन जाए। खाली इतना मुद्दा नहीं है कि प्रोहिबेशन के कारण रेवेन्यू नहीं मिलेगा। मुद्दा यह है कि वह जो सेल्फ रिपब्लिक का गांव उनके मन में है, उस गांव का एक स्वरूप यहां बनाने की कोशिश थी एक तरह से। मैंने जानबूझ कर मासूमियत शब्द का इस्तेमाल किया है। गांधी जी बड़े रणनीतिकार थे। कहीं न कहीं उनके मन में यह

विचार था कि एक पीढ़ी में हम लोग शायद ही इसे कर पाएं। देखिए एक और दिलचस्प बात है शिक्षा के लोकव्यापीकरण की। किन्तु कभी उन्होंने यह नहीं कहा कि सबके लिए शिक्षा इसी प्रकार की होगी और कम से कम सात साल की होगी। एक और दिलचस्प बात है। अंग्रेजी चूंकि आप पढ़ा देंगे तो सामान्यतया आप 11 साल में जो पढ़ाते हैं उसको सात साल में पढ़ा पाएंगे। यह स्वयं गांधी जी का कथन है। एक तरह से क्या कह रहे हैं, 11 साल वाली शिक्षा 7 साल में? यदि शिक्षा आप दे रहे हैं और ऐसे समाज में दे रहे हैं जिस समाज का मैं निर्माण करना चाहता हूं तो अगली पीढ़ी वह होगी जिस पीढ़ी ने इस समाज को कम से कम सात साल जिया हो। वे लोग उस तरह के समाज की स्थापना के लिए एजेन्ट बन पाएंगे जिस समाज का सपना मैं देख रहा हूं। विकास का मॉडल क्या होगा? यह समझने की जरूरत है। विकास के प्रतिमान को भी गांधी जी ने चुनौती दी थी जिसमें अपरिग्रह का भी जिक्र किया गया था। एक तरफ अपरिग्रह है और दूसरी तरफ आज के भौतिकवादी विकास का प्रतिमान है। शायद ग्रामीण पलायन रुक जाए। मैं जो तरीका बता रहा हूं उस तरीके से काम करेंगे तो, औद्योगीकरण, शहरीकरण और तात्विक उन्नति की जो बात है, उसके खिलाफ यह बुनियादी शिक्षा थी। जिसमें क्राफ्ट वर्क पर जोर था। और बहुत दिलचस्प बात यह है कि उसका बीज वहीं समाप्त हुआ। अनिल सद्‌गोपाल ने हरीपुर कांग्रेस का जिक्र किया था, जहां कांग्रेस ने बुनियादी शिक्षा को स्वीकार कर लिया था। पर यदि आप लोग मुझे माफ करें मैं याद दिलाना चाहता हूं कि उसी हरीपुर कांग्रेस ने यह भी निर्णय लिया था कि नेहरू जी की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई जाए जो राष्ट्रीय विकास की योजना बनाएगी।

आप नेहरू और गांधी के विचारों की इस मामले में भिन्नता को जानते ही हैं। नेहरू जी ने 29 उप समितियां बनाई, और उन सब ने मिलकर एक ऐसा विकास का मॉडल पेश किया कांग्रेस के सामने, जिसे कांग्रेस ने आगे स्वीकार किया, जो बहुत ही स्पष्ट रूप से गांधी जी के सपने से बहुत भिन्न था। नेचर ऑफ स्टेट को भी उन्होंने चुनौती दी थी। नया स्वरूप वही होना चाहिए, जिसमें विकास के प्रतिमान को चुनौती दी जा सके। जिसमे नए समाज की रचना के लिए हम एक स्वरूप बना सकें। उन्होंने 6 चीजों पर आक्रमण किया है ताकि उन सब को हम बदल सकें। एक तरह से इन चुनौतियों को बरकरार रखते हुए जो शिक्षा हम बना सकेंगे वह पुनर्भाषित शिक्षा होगी। मेरी राय में बुनियादी शिक्षा कहने की जरूरत नहीं है। मैं जानबूझ कर उटपटांग सा शब्द दे रहा हूं ''बेसिकाईजेशन'' या हिन्दी में कहूंगा, बुनियादीकरण। हम मान लें कि हम बुनियादी शिक्षा नहीं रखेंगे लेकिन हम शिक्षा का बुनियादीकरण कर देंगे।

विद्या भवन सोसायटी, द्वारा 10–11 मार्च 2005 को आयोजित किए बुनियादी शिक्षा की प्रासंगिकता से संपादित अंश।
शरद चन्द्र बेहार, म.प्र. शासन में प्रमुख सचिव रहे हैं। स्कूली शिक्षा के साथ गहरा जुड़ाव।

नई तालीम का बुनियादी ढांचा

लक्ष्मीनारायण मित्तल

महात्मा गांधी ने 22 अक्टूबर, 1937 को वर्धा शिक्षा परिषद में बोलते हुए 'नई तालीम' का बुनियादी ढांचा प्रस्तुत किया था।

महात्मा गांधी कहते हैं– मैं इस ख्याल का हूं कि प्राथमिक, माध्यमिक दोनों को मिला दिया जाए। वजह यह है कि मुझे जिस चीज का पुराना तजुर्बा है, उम्मीद है कि आप लोग भी कबूल करेंगे। सन् 1914 से लेकर अब तक जितना हिन्दुस्तान के गांवों में घूमा हूं और जिस हद तक उसके अन्दर मैं बैठा हूं, उतना शायद ही कोई घूमा और बैठा हो। दक्षिण अफ्रीका में भी मैंने इसका खूब अनुभव किया है। जिस प्रकार 22–23 बरस की उम्र से जिन लोगों के बीच रहकर जो अनुभव मैंने पाया, उससे मैं उनकी हालात बखूबी जानने लगा हूं।

प्राथमिक शिक्षा की जो शक्ल आज है, उसे मैंने गांवों में देखा है और इधर तो मैं एक गांव में ही रहने लगा हूं। और जब मैं इनमें से जिन लड़कों की पढ़ाई को देखता हूं तो फौरन समझ लेता हूं कि वह क्या चीज है, क्योंकि उसका न कोई ढंग है और न ध्येय है। इसलिए मैं समझता हूं कि अगर हम देहातों को कुछ देना चाहते हैं तो जरूरी है कि सैकेन्ड्री तालीम को प्राइमरी के साथ मिला दिया जाए।

मेरे ख्याल से आजकल देहाती मदरसों में लड़कों को जो कुछ पढ़ाया जाता है, उससे देहात वालों को नुकसान ही होता है। लड़के कुछ समय के लिए मदरसे जाते हैं, मगर वहाँ जाकर भी उन्हें असंतोष रहता है। उनमें से अधिकतर या तो शहरी बन जाते है, या गांव के प्रति अपना कर्तव्य भूल जाते हैं और कुछ तो बदमाशी वगैरा भी सीख जाते हैं। इसलिए अपने अब तक के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि हमारी मौजूदा प्राइमरी तालीम से गांव वालों को फायदा नहीं पहुंचा।

तो सवाल होता है कि इस प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप क्या हो? मेरा तो जवाब यह है कि किसी उद्योग या दस्तकारी को बीच में रखकर उनके जरिये ही यह सारी शिक्षा दी जानी चाहिए। चन्द धन्धों की मारफत मैंने उनको (अपने लोगों को) जो तालीम दी है उनसे उन्हें फायदा ही पहुंचा है। अपनी वकालत के दिनों में भी घर पर कुछ न कुछ उद्योग किया करता था, और बच्चों को भी बढ़ईगिरी वगैरह की तालीम देता था। जूते बनाने का काम मैने श्री केलन बैक से सीखा, जो खुद 'टेचिस्ट मोनेस्टरी' में सीखकर आए थे, क्योंकि वे लोग हिन्दुस्तानियों को सिखाते नहीं थे। इस प्रकार जिन्होंने मुझसे तालीम ली, मैं नहीं समझता हूं कि उनकी दिमागी हालत कमजोर रही या कोई नुकसान उन्हें पहुंचा। टालस्टॉय फार्म में भी शिक्षा का यही तरीका रहा। वहां तो तरह–तरह के लड़के थे। अच्छे, बुरे और बदमाश सभी। इनमें हिन्दु भी थे, मुसलमान भी थे और पारसी भी थे। सब एक साथ मिलजुल कर रहते थे और अपने–अपने धर्मों का पालन भी करते थे। वजह इसकी यह थी कि मैंने उनको सिर्फ किताबी तालीम न दी बल्कि साथ–साथ कुछ धन्धे भी सिखाए। इनमें कुछ ने चमड़े का काम

सीखा, कुछ ने बढ़ईगिरी सीखी और चन्द ऐसे भी निकले जो आज इन धन्धों के जरिये काफी कमा रहे हैं।

लेकिन आज मैं जो चीज़ आपके सामने रखने जा रहा हूं वह पढ़ाई के साथ–साथ एक धन्धा सिखा देने की चीज़ नहीं है। मैं तो अब यह कहना चाहता हूं कि जो भी सिखलाया जाए, सब किसी न किसी उद्योग या दस्तकारी के जरिये ही सिखाया जाए। आप यह कह सकते हैं कि हमारे यहां लड़कों को सिर्फ धन्धे ही सिखाए जाते थे। मैं मानता हूं– परन्तु उन दिनों धन्धों के जरिए सारी तालिम देने की बात लोगों के सामने नहीं थी। धन्धा सिर्फ धन्धे के ख्याल से ही सिखाया जाता था, हम धन्धे या दस्तकारी की मदद से दिमाग को आला बनाना चाहते हैं। आज हालत यह है कि लोहार का लड़का लोहरी नहीं जानता, और सुतार का सुतारी छोड़ बैठा है। इन्होंने किताबी तालीम पाई मगर अपने पेशे को भुल गए। उससे मुंह फेर लिया। अब गांव छोड़ शहर में बसते हैं और मुहर्ररी करते हैं। अगर पढ़–लिख कर भी अपने पुस्तैनी धन्धों को नहीं छोड़ते और उसमें तरक्की करके दिखलाते तो आज हिन्दुस्तान की जैसी बुरी हालत हो गई है, न हो पाती। आज देहात में कहीं भी चले जाइए, अच्छे बढ़ई, लौहार या कारीगर के दर्शन नहीं होते। मेरे जो साथी गांव में बैठ कर काम कर रहे हैं, उनका भी यही तजुर्बा है कि यहाँ जो बढ़ई वगैरह है, वे अपने धन्धे के हिसाब से नाकामयाब से हैं। दूर मत जाइए, इस चर्खे को ले लीजिए, जो सारे हिन्दुस्तान में फैला हुआ था। मगर अंग्रेज इसे इंग्लैण्ड ले गए और वहां इसमें इतनी तरक्की कर दी कि बड़ी–बड़ी मिलें खड़ी हो गई। मेरा आशय यह नहीं है कि उन्होंने जो कुछ किया अच्छा किया। मगर इसमें कोई शक नहीं है कि जब उन लोगों ने इतनी तरक्की कर ली तब हम जो कुछ हमारा था, उसे भी खो बैठे।

इसीलिए मेरी दरख्वास्त है कि हम सिर्फ उद्योग या दस्तकारी ही न सिखाएं बल्कि इन्हीं के जरिये बच्चों को सारी तालीम दें।

तकली का सबक हमारे विद्यार्थी का पहल सबक होगा, जिसके जरिये यह कपास का, लंकाशायर का और अंग्रेजी सल्तनत का बहुत कुछ इतिहास सीख सकेगा। यह तकली कैसे चलती है? इसका क्या उपयोग है? और इसके अन्दर क्या–क्या ताकत पड़ी हुई है? यह बस खेल–खेल में ही बालक जान लेता है। इसी के जरिये थोड़ा गणित का ज्ञान भी उसे मिल जाता है क्योंकि तकली पर जो सूत के तार उसे गिनवाये जाए और पूछा जाए कि कितने तार कते तो धीरे–धीरे उसके अन्दर से गणित का भी काफी ज्ञान कराया जा सकता है। खूबी यह है कि उसके दिमाग पर इन सबका जरा भी बोझ नहीं पड़ता। सीखने वाले को तो पता भी नहीं कि वह कुछ सीख रहा है। वह अपने खेलता कूदता और गाता रहता है, तकली चलाता है और इसी में बहुत कुछ सीख लेता है।

सिर्फ तकली की बात मैं इसलिए कर रहा हूं कि मैंने उसकी ताकत और उसके रोमांस का अनुभव किया है। मैं तो प्राथमिक शिक्षा के लिए तकली ही को बीच में रखना चाहता हूं। तकली मुझे सबसे ज्यादा इसलिए जंचती है कि इसे छोड़कर और धन्धों के लिए हमारे पास सामान मौजूद नहीं है। तकली को न ज्यादा खर्च की गरज़ न सरंजाम की। पहले साल लड़कों को सब कुछ तकली ही के बारे में बताया जाए इससे कमायी भी काफी हो सकती है और इसके फैलाव में कोई रूकावट भी नहीं आएगी क्योंकि इसके सूत से जो कपड़ा बनेगा, उसके पहनने वालों की संख्या हमारे यहां इतनी है कि अपने ही बच्चों द्वारा बनाए गए कपड़े को छोड़कर

दूसरा कपड़ा खरीदने की हमें जरूरत ही न पड़ेगी और कपड़ा खरीदना हम पसन्द भी करेंगे।

मैंने सोचा कि यह पाठ्यक्रम सात साल का रखा जाए। इससे जहां तक तकली का संबंध है विद्यार्थी बुनाई तक के व्यावहारिक ज्ञान में जिसमें रंगाई और डिजाइंनिग आदि भी शामिल होंगे, निपुण हो जाएंगे।

मैं इस बात के लिए बहुत ही उत्सुक हूं कि दस्तकारी के जरिये विद्यार्थी जो कुछ पैदा करें, उसकी कीमत से शिक्षक का खर्च निकल आए क्योंकि मुझे यकीन है कि देश के करोड़ों बच्चों को तालीम देने के लिए सिवा इसके और कोई रास्ता नहीं है। और न ही यह मुमकीन है कि हम उस वक्त तक ठहरें जब तक कि सरकार अपने खजाने में हमें आवश्यक रुपया दे या वायसराय फौजी खर्च कम कर दें या इसी तरह का कोई कामगर जरिया निकल आए।

प्राथमिक शिक्षा की इस योजना में सफाई, आरोग्य और आहार सिद्धान्तों का समावेश भी हो जाता है। इसमें बच्चों की यह शिक्षा भी शामिल समझिए जिससे वे अपना काम खुद करना सीखेंगे और घर पर अपने मां–बाप के काम में भी मदद पहुंचायेंगे। आजकल हमारे बच्चों का न सफाई का ख्याल रहता है न साफ सुथरेपन का, वे न तो अपने पैरों पर खड़ा होना जानते हैं और न उनकी तन्दुरूस्ती ही ठीक रहती हैं। मैं चाहूंगा कि उनके लिए संगीत के साथ लाजमी तौर पर ऐसी कवायद और कसरतें वगैरा का इंतजाम हो जाए, जिससे उनकी तन्दुरूस्ती सुधरे और जीवन तालबद्ध बने।

मुझ पर यह इल्जाम लगाया जा रहा है कि मैं साहित्यिक या अदबी शिक्षा के खिलाफ हूं, मगर बात ऐसी नहीं है। मेरे स्वावलम्बन के पहलू पर भी हमला किया गया है। कहा यह गया है कि जहां प्राथमिक शिक्षा पर हमें लाखों रुपया खर्च करना चाहिए, वहां हम उल्टे बच्चों से ही इसे वसूल करने जा रहे हैं। साथ ही यह आदेश भी बतलाया जाता है कि इससे मुल्क की बहुत ताकत व हक बेकार खर्च होगी। लेकिन अनुभव इस आदेश को गलत साबित कर चुका है। और जहां तक बच्चों पर बोझ डालने या उनका शोषण करने का सवाल है, मैं जानना चाहूंगा कि क्या यह बोझ उन्हें उनके सर्वनाश से बचाने के लिए नहीं है। लेकिन जहां बच्चों को इस बात का बढ़ावा दिया जाएगा कि वे कातें और खेती के काम में अपने मां–बाप से ही नहीं, बल्कि अपने गांव और देश से भी है और उन्हें इसकी भी कुछ सेवा करनी चाहिए। मेरे ख्याल में तो तालीम का यही एक तरीका आता है। मंत्रियों से मैं कहूंगा कि खैराती तालीम देकर वे मुल्क के बच्चों का असहाय और अपाहिज ही बनाएंगे, जबकि उनकी शिक्षा के लिए उनकी खुद मेहनत कराकर वे उन्हें बहादुर और आत्मविश्वासी बना सकेंगे।

तालीम का यह तरीका हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सभी के लए एक जैसा होगा। मुझसे पूछा जाता है कि मैं धार्मिक शिक्षा पर कोई जोर क्यों नहीं देता? वजह यह है कि मैं उन्हें स्वावलम्बन धर्म तो सिखा ही रहा हूं, जो मेरे ख्याल में सब धर्मों का असली रूप है।

हां, इस तरह की तालीम देकर तैयार होंगे, उन्हें रोजी देना राज का फर्ज होगा। जहां तक शिक्षकों और अध्यापकों का सवाल है, इसे लाजमी सेवा का तरीका माना जाए। इटली का और दूसरे देशों का उदाहरण देकर उन्हें इसका महत्व भी बता दिया है।

अपना रोजगार शुरू करने से पहले अगर हमारे नौजवानों को एक या दो साल के लिए लाजमी तौर

पर सेवा का या पढ़ाने का काम करना पड़े तो इसे गुलामी कहना कहां तक ठीक होगा? मैं नौजवानों से कहूंगा कि वे अपनी जिन्दगी का एक साल देश की सेवा के लिए मुफ्त में दें। खुशी–खुशी दे दें। इसके लिए कानून बनाने की जरूरत भी हुई तो वह जबर्दस्ती न कहलाएगी।

सात साल के अंत में बालक को इस काबिल हो जाना चाहिए कि वे अपनी पढ़ाई का खर्च खुद अदा कर सकें और अपने परिवार के कमाऊ पूत बन सकें।

हमारे यहां कौमी झगड़े होते रहते हैं, लेकिन यह कोई हमारी ही खासियत नहीं है, इंग्लैण्ड में भी ऐसी लड़ाइयां हो चुकी हैं और आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद सारे संसार का शत्रु हो रहा है। अगर हम कौमी और अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष को बन्द करना चाहते हैं तो हमारे लिए यह जरूरी है कि जिस शिक्षा की मैंने यहां हिमायत की है उससे अपने बालकों को शिक्षित करके शुद्ध और सुदृढ़ आधार पर उसका आरम्भ करें। मेरी इस योजना के तह में अहिंसा भरी हुई है। अगर सरकारी आमदानी में कोई कमी न हो और खजाना हमारा भरा हुआ रहे, तो भी हमारे लिए शिक्षा का यही तरीका रहेगा, बशर्ते कि हम अपने बालकों को शहरी न बनाना चाहें।

हम तो उन्हें अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपने देश की सच्ची प्रतिभा का प्रतिनिधि बनाना चाहते हैं और हमारे ख्याल से स्वावलम्बी प्राथमिक शिक्षा के सिवा किसी दूसरी ढंग से हम उन्हें ऐसा नहीं बना सकते।

गांधी जी ने अंत में यही कहा कि यूरोप या रूस या अमरीका हमारे लिए आदर्श नहीं हो सकते क्योंकि उनकी तहबीजें हिंसा पर आधारित हैं और अमरीका या इंग्लैण्ड शिक्षा पर जो लाखों रुपया खर्च करता है, वह लूट व शोषण का धन है। गांधीजी के अनुसार हम तो इस शोषण की बात सोच नहीं सकते। इसीलिए हमारे पास शिक्षा की इस अहिंसक योजना के सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता।

इसीलिए गांधी जी के अनुसार नई तालीम 'जीवन के लिए तालीम है।' व्यक्ति का सुसामंजस्य और समतोल विकास ही नई तालीम का ध्येय नहीं है, बल्कि एक ऐसे समाज का निर्माण करना इसका ध्येय है, जिनकी नींव न्याय पर हो, जिस समाज में अमीर और गरीब का भेदभाव न हो, जहां सबको आजादी का हक हासिल हो और अपनी रोजी मिलने का विश्वास हो। सच्ची शिक्षा वही है जिसे पाकर मनुष्य अपने शरीर, मन और आत्मा के उत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास कर सकें।

लक्ष्मी नारायण मित्तल, लक्ष्मी भवन, लण्डौर कैन्ट, मसूरी–248179

एक विनम्र अपील

बुनियादी शिक्षा को लेकर हम निरंतर बेहतर सामग्री जुटाने की कोशिश कर रहे हैं। अब तक बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्षों पर काफी कुछ कहा जा चुका है। लेकिन बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, शिक्षक प्रशिक्षण, कक्षा शिक्षण समवाय... आदि पर खालीपन महसूस किया जा रहा है।

बुनियादी शिक्षा को सही अर्थों में स्थापित करने का मतलब यही है कि इसके व्यावहारिक पहलूओं पर सामग्री शिक्षक साथियों, संस्थाओं के पास उपलब्ध हो। बुनियादी शिक्षा से जुड़े साथियों से हम अपेक्षा करते हैं कि–

- बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु पर सामग्री भेजें।
- बुनियादी शिक्षा में शिक्षकों का प्रशिक्षण कैसे करें।
- कक्षा शिक्षण का स्वरूप क्या हो? कक्षाएं कैसे संचालित होती हैं? (शिक्षक साथी अपने अनुभव लिखकर भेजें)
- बुनियादी शिक्षा में समवाय कैसे करें?
- काम के जरिए ज्ञान का अर्जन कैसे करें?
- बुनियादी शिक्षा के माध्यम से पढ़ रहे/पढ़ चुके छात्र/छात्राओं के अनुभव।
- अन्य मसले जो आपकी निगाह में महत्वपूर्ण लगते हैं।

एक बात का जरूर ध्यान रखें कि बुनियादी शिक्षा के सैद्धान्तिक पहलुओं के बजाय व्यावहारिक पहलुओं पर सामग्री भेजें।

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

खुद भी पढ़ें, दूसरों को भी पढ़ाएं

फोटो फीचर

विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर में आयोजित ग्रीष्मकालीन शिविर (15 मई से 16 जून, 2007 तक) की चंद तस्वीरें

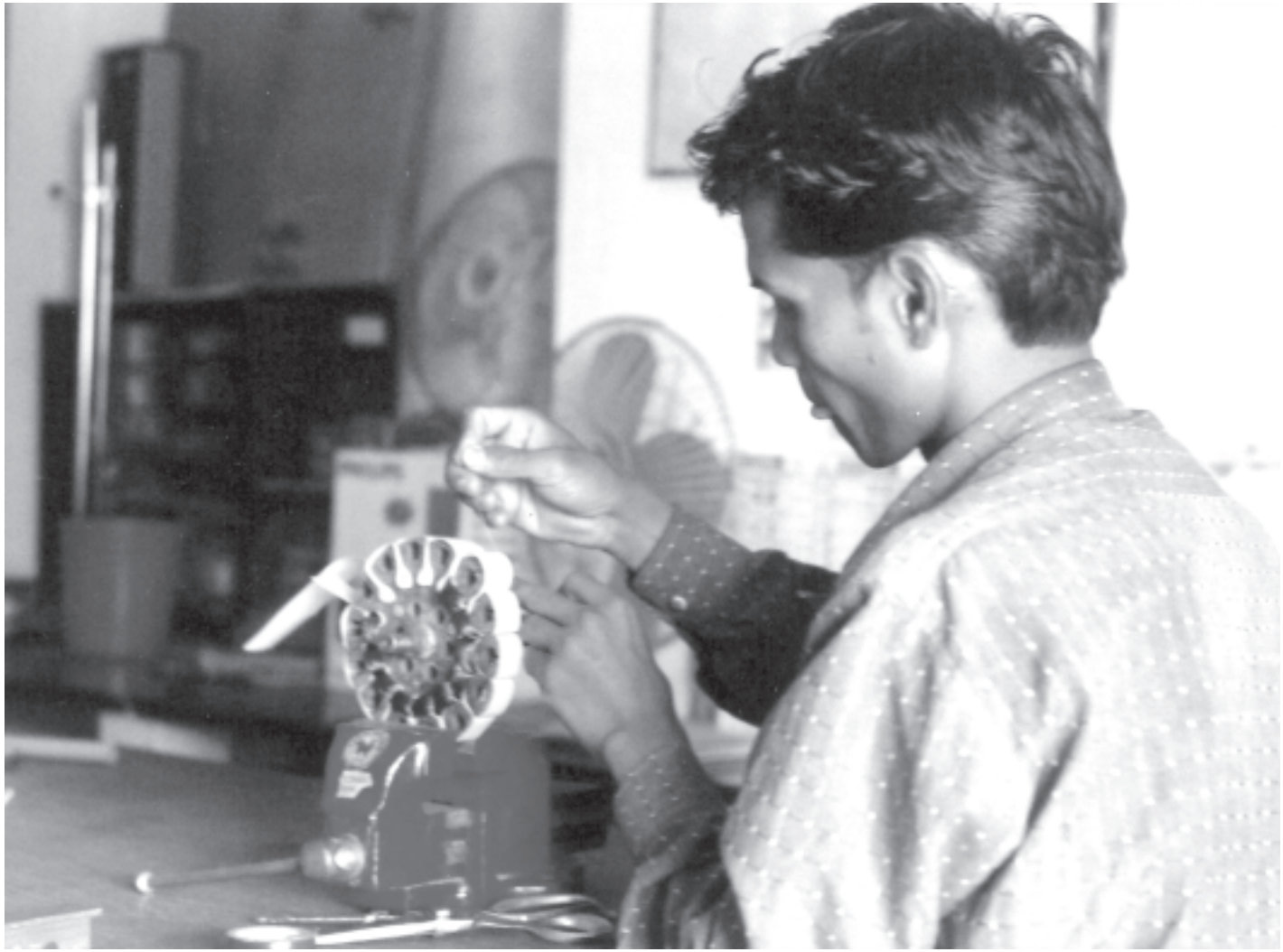

''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर एवं गूजरात विद्यापीठ, आश्रम रोड़, अहमदाबाद द्वारा संयुक्त रूप से प्रकाशित।